Chapter - 1

==

: प्रथम अध्याय :

: विषय-प्रवेश :

==

: प्रथम अध्याय :

: विषय-प्रवेश :

प्रास्ताविक :

उपन्यास इस नये युग की नयी विधा है । यद्यपि उपन्यास की गणना कथा-साहित्य में होती है और हमारे यहां कथा-साहित्य प्राचीन काल से उपलब्ध हो रहा है ; तथापि उपन्यास अपने वस्तु , शिल्प , चरित्र-सृष्टि , विचार-उद्देश्य , देशकाल आदि अनेक दृष्टियों से पुराने कथा-साहित्य से अलग पड़ता है । साहित्य की दूसरी विधाओं की तुलना में उपन्यास अपेक्षाकृत एक नयी विधा है । यूरोप में उसका उद्भव हुआ । और वहां भी वह एक नयी विधा के रूप में आया है , कदाचित इसीलिए उसे " Novel " कहा गया है । " Novel " शब्द का अर्थ , एक विशिष्ट अर्थ, नया या नवीन होता है -- " New in an interesting

or unusal way. । अर्थात् जो रसप्रद और असामान्य दृष्टि से नया हो । मूल इटाली शब्द " Novella " से वह व्युत्पन्न हुआ है । इटाली में उसे " Novella storia " कहा गया है और उसका अर्थ दिया गया है -- " New story ".[2] इस प्रकार वहां भी उसे प्राचीन कथा से अलगाया गया है । इसे भी एक विचित्र संयोग मानना होगा यूरोप में जिस प्रथम रचना को उपन्यास के निकट माना गया है, वह इटली लेखक बोकाशियो की "डेकामेरोन " है ।[3]

यूरोप में उत्क्रान्ति (Renaissance), जिसे कुछ विद्वान यूरोपीय पुनर्जागरण कहते हैं का प्रारंभ चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ । इस पुनर्जागरण से यूरोपीय जीवन में गुणात्मक परिवर्तन आया है । इस संदर्भ में डा. भारतभूषण अग्रवाल अपने शोध-प्रबंध " हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव " में निर्देशित करते हैं -- "पुनर्जागरण यूरोप की वह महान संक्रान्ति थी जिसने मध्ययुगीन जड़ता, रूढ़ि और अन्धविश्वासों को, गाथिक वास्तु-विद्या को, संकीर्ण दृष्टिकोण को, ह्रासोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था को और सामन्तीय अराष्ट्रीयता को बहा दिया और उनके स्थान पर संदेहवाद, व्यक्तिवाद, पदार्थवाद, मुक्ति, आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ एक गतिशील आर्थिक व्यवस्था और राष्ट्रीयता को प्रतिष्ठित किया ।"[4] फलतः गतानुगतिकता के स्थान पर समाज में एक नयी स्फूर्ति और सक्रियता का जन्म हुआ । धार्मिक मूढ़ता, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों का स्थान वैज्ञानिक चिंतन ने लिया । परिणामतः व्यापार-उद्योग को नयी गति मिली और नये-नये समुद्री मार्गों की खोज होने लगी । मुद्रण कला के आविष्कार ने बौद्धिक-जगत में नयी क्रान्ति का काम किया । "इस नितान्त नयी गतिशीलता और सक्रियता के प्रतिफलन के रूप में उपन्यास की नयी विधा का उदय हुआ । मध्ययुगीन रम्याख्यानों से उसका उतना ही सम्बन्ध था जितना इस नयी दृष्टि का मध्ययुगीन दृष्टि से --उसमें गुणात्मक परिवर्तन हो गया था ।"[5]

हमारे यहां भारतीय भाषाओं में इस नये साहित्य-रूप को उपन्यास (बंगला , हिन्दी) , नवलकथा (गुजराती , मराठी) आदि कहा गया है । दक्षिण की भाषाओं में तेलुगू में "नवल" , तमिळ में "नवीनम्" तथा " नावल " ; मलयालम में "नोवल" और "आख्यायिक" ; कन्नड़ में "कादम्बरि " आदि शब्दों का प्रयोग उपन्यास के लिए हुआ है । [6] पंजाबी , सिन्धी , बंगला , असमिया , उड़िया आदि भाषाओं में इसे "उपन्यास" ही कहा गया है । केवल अंतर इतना है कि पंजाबी में उसे "उपनिआस" और सिन्धी में "उपन्यासु" रूप मिलता है । मराठी में "नवलकथा" के उपरांत उसे "कादंबरी" कहा गया है । मराठी और कन्नड़ में केवल "ह्रस्वx " ह्रस्व इ" और "दीर्घ ई " का फरक है । उर्दू में उसे "अफसाना" और "नाविल" कहते हैं । इस प्रकार लगभग सात-आठ भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के " Novel " से मिलते-जुलते शब्द मिलते हैं । [7] इससे एक बात निर्विवाद रूप से प्रमाणित होती है कि भारतीय भाषाओं में यह साहित्य-प्रकार अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप आया है ।

यूरोप में पुर्नx पुनर्जागरण के उपरान्त जिन स्थितियों का निर्माण हुआ , उन प्रकार की स्थितियों का निर्माण हमारे यहां अठारहवीं- उन्नीसवीं शताब्दी में "नवजागरणकाल" के कारण हुआ । नतीजतन हमारे यहां भी उपन्यास उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से उपलब्ध होता है । टेकचन्द ठाकुर कृत "अलालेर घरेर दुलाल" (1857), बाबा पदमनजी कृत "यमुनापर्यअण " (1857) , ए. के गर्नी कृत "कामिनीकान्तार" (1877) , कोककोंडा वेंकटरत्नम् पन्तुलु कृत "महाश्वेता" (1867) , वेदनायकम् पिलै कृत " प्रतापमुदलियार चरितम् " (1869) , आर्च डीकन के. कोशी कृत "पुलेली कुंचु " (1882) , नंदशंकर तुळजाशंकर मेहता कृत "करणघेलो" (1866) , पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत " भाग्यवती " (1878) आदि उपन्यासों को क्रमशः बंगला , मराठी , असमिया , तेलुगू , मलयालम , गुजराती और हिन्दी के प्रथम उपन्यास माने गए हैं । [8] वैसे कई

आलोचक लाला श्रीनिवासदास द्वारा प्रणीत उपन्यास "परीक्षागुरु" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं । किन्तु उसका रचनाx प्रकाशन वर्ष सन् 1882 है ।

इस विवेचन की उपादेयता इसलिए है कि हमारा शोध-प्रबंध उपन्यास-विधा को लेकर है , और भले ही हमारे आलोच्य उपन्यासकार ने रामायण - महाभारत से अपने विषय-वस्तु को लिया है , किन्तु उनकी विधा उपन्यास है , अतः उनका अर्थघटन उन्होंने आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से किया है । डा. नरेन्द्र कोहली के रामायण-महाभारत पर आधारित उपन्यासों को हम "पौराणिक उपन्यासों " की कोटि में रख सकते हैं । अतः भले कथा के केन्द्र में पौराणिक वस्तु हो , किन्तु उनमें निहित चेतना नयी है , Novel है ।

उपन्यास : एक नयी विधा :

उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार है , अतः कई विद्वान उसे प्राचीन कथा-साहित्य से निःसृत मानते हैं । हमारा प्राचीन कथा-साहित्य काफ़ी समृद्ध है । पंचतंत्र , हितोपदेश , कथासरित सागर , रामायण-महाभारत की कथाएं , विक्रम-वैताल की कथाएं , बत्तीस पुतलियों की वार्ता , बौद्ध जातक-कथाएं , जैन जातक-कथाएं , दश-कुमार चरित , कादम्बरी , कालिदास-भोज की कथाएं , उदयन की कथाएं , अकबर-बिरबल की कथाएं आदि एक सुदीर्घ व सातत्यपूर्ण कथा-साहित्य हमारे पास है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रदेश की अपनी लोककथाएं हैं । हिन्दी की बात करें तो जैनों के प्रबंध काव्य , वीरगाथात्मक रासोकाव्य , ढोला-मारू-रा दुहा , संदेशरासक , भक्तिकालीन सूफी प्रेमाख्यान , रामभक्ति प्रबंध काव्य आदि कथात्मक साहित्य की एक परंपरा हमें प्राप्त है और इसीलिए यह कहने का एक कारण है कि आधुनिक उपन्यास इसीका विकसित रूप है ।

परन्तु हम इस हकीकत को झुठला नहीं सकते कि उपन्यास का उद्भव अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् और अंग्रेजी-साहित्य के प्रभाव

स्वरूप हुआ है ; लाला श्रीनिवासदास कृत "परीक्षागुरु" को ឴ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , डा. कोतभरे , डा. त्रिभुवनसिंह , डा. प्रतापनारायण टंडन , डा. रणवीर रांग्रा , आदि औपन्यासिक-साहित्य के विद्वान हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं ।[9] स्वयं लेखक श्रीनिवासदास इसे एक नयी चाल की पुस्तक मानते हैं , यथा -- " अपनी भाषा में नई चाल की पुस्तक है । " [10] फिर आगे यह "नई चाल " क्या है , उसे खुद ही समझाया है —" अपनी भाषा में अब तक वार्ता रूपी जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें अक्सर नायक-नायिका वगैरह का हाल ठेठ से सिलसिलेवार (यथाक्रम) लिखा गया है , जैसे कोई राजा , बादशाह , सेठ-साहूकार का लड़का था , इसके मन में इससे यह रूचि हुई है और उसका यह परिणाम निकला , ऐसा सिलसिला कुछ मालूम नहीं होता । लाला मदनमोहन एक अंग्रेजी सौदागर की दूकान में असबाब देख रहे हैं । लाला ब्रजकिशोर , मुंशी चुन्नीलाल और मास्टर शम्भूदयाल उनके साथ हैं । इनमें मदनमोहन कौन , ब्रजकिशोर कौन , चुन्नीलाल कौन और शम्भूदयाल कौन हैं ? इनका स्वभाव कैसा है ? परस्पर सम्बन्ध कैसा है ? हरेक की हालत क्या है ? यहां इस समय किसलिए इकट्ठे हुए हैं ? ये बातें पहले से कुछ भी नहीं बताई गई । हां , पढ़ने वाले धैर्य से सब पुस्तक पढ़ लेंगे , तो अपने-अपने मौके पर सब भेद खुलता चला जायेगा और आदि से अन्त तक सब मेल मिल जायेगा ।" [11] उक्त कथन से यह प्रकट होता है कि लेखक इस नाटकीय आरंभ को ही "नई चाल " मानते हैं । लेखक के इस कथन से से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि इस प्रकार का साहित्य-रूप हमारे यहां प्रचलित नहीं था । दूसरे स्वयं लेखक ने इसे नवीन और अंग्रेजी ढंग का नावेल कहा है । [12]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है —" नाटकों और निबंधों की ओर विशेष झुकाव रहने पर भी बंगभाषा की देखादेखी नए ढंग के उपन्यासों की ओर भी ध्यान जा चुका था । अंगरेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहलेपहल हिन्दी में लाला श्रीनिवासदास का " परीक्षागुरु " ही निकला

था ।"[13] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि हिन्दी उपन्यास किसी पहले से चलती आ रही परंपरा का विकास नहीं, बल्कि अंग्रेजी "नावेल" से ही उसका आविर्भाव हुआ है ।

विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपन्यास के लिए जिस शब्द का सबसे ज्यादा प्रयोग हुआ है वह या तो "नावेल" है या उससे मिलता-जुलता कोई शब्द है, यथा "नवल", "नवलकथा आदि-आदि । यह हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट कर चुके हैं । इससे भी एक बात जो सामने आती है वह यह है कि उपन्यास एक नयी विधा है ।

हमारा नम्र किन्तु स्पष्ट अभिमत है कि उपन्यास एक नयी विधा है । प्राचीन कथा साहित्य से वह किस प्रकार अलग है, उसे नीचे बहुत ही संक्षेप में बताया जा रहा है --

1. प्राचीन कथा साहित्य प्रायः राजा-महाराजाओं, राजकुमारों, रानियों, सामंतों व नवाबों, सेठ-साहूकारों से सम्बद्ध होता था । उसमें निम्न वर्ग केन्द्र में कभी नहीं होता था । निम्न वर्ग के लोग नौकर-चाकर व सेवक के रूप में होते थे । जबकि वर्तमान या आधुनिक कथा-साहित्य में निम्न एवं मध्यवर्ग के लोग भी नायक-नायिका के रूप में मिलते हैं । "गोदान" का नायक होरी एक छोटा किसान और निम्न जाति से है । "पत्थर-अल-पत्थर" (उपेन्द्रनाथ अश्क) का नायक हसनअली एक सामान्य टांगेवाला है । "एक टुकड़ा इतिहास" (गोपाल उपाध्याय) की चनुली या चन्दोदेवी दलित जाति की है । "अल्मा कबूतरी" उपन्यास की नायिका अल्मा कबूतरा जाति की ~~xx~~ है, जिसकी गणना अनुसूचित जनजातियों~~xxx~~ (Scheduled tribes) में होती है और वह राजनीति में भी बहुत ऊंचाई तक जाती है । "मुझे चांद चाहिए" (सुरेन्द्र वर्मा) की वर्षा वसिष्ठ एक निम्न-मध्यवर्ग की युवती है और अभिनय के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति ~~xxxx~~ अर्जित करती है । पुराने कथा-साहित्य में ये परिदृश्य दृष्टिगोचर नहीं होते थे ।

2. प्राचीन कथा-साहित्य में वैयक्तिकता का अभाव था । उसके पात्र प्रायः सामान्यीकृत होते थे । कई बार उनके नाम तक नहीं होते थे । "एक राजा था या एक राजकुमार था " से काम चलाया जाता था । कई बार राजाओं के नाम प्राप्त होते थे तो वे प्रायः विक्रम , भोज , उदयन , काशीराज इत्यादि होते थे । इस प्रकार पात्र-वैविध्य का अभाव था । इस तरह राजा-रानियों तक के नाम नहीं होते थे ; दूसरी तरफ सामान्य प्राणियों — पशु-पक्षियों — के भी नाम होते थे , यथा — चित्रग्रीव नामक कबूतर , हीरामन नामक तोता , झमकू नामक चींटी आदि-आदि । जबकि आधुनिक कथा-साहित्य में छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी नाम मिलता है ।

3. प्राचीन कथा-साहित्य में प्रायः चरित्र-चित्रण का अभाव-सा होता था । नायक में संसार के तमाम गुण होते थे और खलनायक में दुर्गुण ही दुर्गुण बताये जाते थे । इस प्रकार मानव-चरित्र का उसमें अभाव था । कदाचित इसीलिए डा. एस.एम. गणेशन कहते हैं कि मानव-चरित्र की पहचान सर्वप्रथम हमें प्रेमचंद ने करवायी ।[14]

4. प्राचीन कथा-साहित्य कथा-सूत्रों (Story-Motifs) पर चलता था । यदि 40-50 कहानियों को पढ़ जाएं तो बहुत-सी चीजें उनमें सामान्य मिलती थीं । इनको कथा-सूत्र (Story-Motifs) कहा गया है । प्रायः राजाओं के एकाधिक रानियां होती थीं, तो उसकी संख्या तीन या सात होती थीं । उनमें एक रानी अतिप्रिय होती थीं । शेष रानियां प्रायः उपेक्षित रहती थीं । सर्वाधिक उपेक्षित रानी का बेटा सर्वाधिक शक्तिशाली और होनहार होता था । यदि कोई राजा निःसंतान हुआ तो प्रजा में से किसीके टोकने पर वह जंगल में तप करने के लिए प्रस्थान करेगा । जंगल में जाकर वह किसी अपूजित शिवालय में जाकर उसकी पूजा करेगा । महादेव प्रसन्न होकर उसे आम का फल देंगे , जिसे खाने पर रानी पुत्र को जन्म देगी । राजा का अभिशाप दूर होगा । जबकि आधुनिक कथा-साहित्य वास्तविक घटनाओं

पर आधारित होता है ।

5. प्राचीन कथा-साहित्य में अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएं प्राप्त होती थीं । तर्क और संगति से उनका कोई मेल नहीं था । व्यक्ति उड़कर कहीं से कहीं पहुंच जाता था , पशु-पक्षी कई बार मनुष्य की वाणी बोलते थे , जैसे "पद्मावत" की कहानी में हीरामन तोता सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मिनी या पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करता है । कई बार पशु-पक्षी नायक-नायिका के लिए दूत-कर्म करते थे । नल-दमयंती की कहानी में एक हंस जाकर नल के शौर्य और पराक्रम की गाथा दमयंती को सुनाता है । ऐसी तो अनेक अजीबोगरीब घटनाएं इनमें प्राप्त होती थीं , जबकि आधुनिक कथा-साहित्य -- कहानी और उपन्यास -- वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित हैं और उनमें वास्तविक घटनाओं का आलेखन मिलता है ।

6. प्राचीन कथा-साहित्य में "देशकाल" या "वातावरण " का तत्त्व एक सिरे से गायब रहता था । "एक राजा था " या "एक नगर था " से काम चलाया जाता था । उनमें देश ﴾ स्थान ﴿ और "काल" ﴾समय ﴿ प्रायः अनिश्चित-से रहते थे । जबकि इस नये कथा-साहित्य में तो "देशकाल" का सविशेष महत्त्व है । "आंचलिक उपन्यास " का तो यह प्राणतत्त्व है । उपन्यासकार यथार्थ देशकाल के चित्रण के लिए काफी परिश्रम करते हैं । वृन्दावनलाल वर्मा के संदर्भ में कहा जाता है कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के पूर्व वह काफी अनुसंधान करते थे ।[15] आंग्ल उपन्यासकार जायस कैरी इस संदर्भ में लिखते है — " Mr. Carry explained that the he was now plotting the book. There was research yet to be done. Research he explained, was sometimes a bore, but it was necessary for getting the political and social backwaround of his work right " [16]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में भी परिश्रमजन्य "रीसर्च" का आनंद प्राप्त होता है । आडुल्स हक्सले ने अपने उपन्यास " बेव न्यू वर्ल्ड " में मेक्सिको शहर का यथार्थ अंकन करने के लिए विपुल सामग्री का संचयन और अध्ययन किया था । इस निमित्त उस शहर की कई-कई बार यात्रा उन्होंने की थी । अभिप्राय यह कि प्राचीन कथा-साहित्य में जहां "वातावरण" तत्त्व नदारद-सा होता था , वहां इस आधुनिक कथा-साहित्य में उसका वह एक आवश्यक तत्त्व माना जाता है ।

इस प्रकार वस्तु , शिल्प , चरित्र-सृष्टि आदि अनेक दृष्टियों से "उपन्यास " एक नयी विधा के रूप में सामने आता है ।

हिन्दी उपन्यास का विकास : एक विहंगम दृष्टिपात :

हमारे शोध-प्रबंध का विषय डा. नरेन्द्र कोहली के रामायण व महाभारत पर आधारित उपन्यासों से सम्बद्ध है । डा. कोहली के ये उपन्यास "पौराणिक उपन्यास " की श्रेणी में आते हैं और पौराणिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचन्दोत्तरकाल से हुआ है । अतः प्रारंभिक औपन्यासिक प्रवृत्तियों से लेकर डा. नरेन्द्र कोहली तक की औपन्यासिक प्रवृत्तियों पर एक विहंगम दृष्टिपात करना अनुपयुक्त न होगा । हिन्दी उपन्यास के विकास तथा उसके गौरव - स्थापन में प्रेमचन्दजी के योगदान को नकारा नहीं जा सकता । अतः हिन्दी उपन्यास के इतिहासकारों ने जहां भी उपन्यास के विकास की बात की है , वहां प्रेमचन्द को केन्द्र में रखा गया है -- यथा , पूर्व-प्रेमचंदकाल (1878 - 1918) , प्रेमचंदकाल (1918-1936 ई.) तथा प्रेमचन्दोत्तरकाल (1936- अद्यावधि) ।

पूर्व-प्रेमचन्दकाल :

प्रेमचंद के "सेवासदन" नामक उपन्यास का हिन्दी में सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1918 में हुआ था , अतः तभी से प्रेमचंद काल माना जाता है । यद्यपि हिन्दी के अधिकांश विद्वान "परीक्षागुरु" को हिन्दी का प्रथम

उपन्यास मानते हैं किन्तु उसका रचना-काल सन् 1882 है और पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत उपन्यास का प्रकाशनकाल सन् 1878 है, अतः डा. सुरेश सिनहा, डा. गणपतिचन्द्र गुप्त, डा. पारूकान्त देसाई आदि विद्वान "भाग्यवती" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं।[17] अतः पूर्व-प्रेमचन्दकाल सन् 1878 से 1918 ई. तक माना जाता है।

इस काल-खण्ड की औपन्यासिक प्रवृत्तियों में निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है — 1. अनूदित उपन्यास, 2. सामाजिक उपन्यास, 3. ऐतिहासिक उपन्यास, 4. जासूसी उपन्यास और 5. तिलस्मी उपन्यास।

यद्यपि अनूदित उपन्यास उस भाषा-साहित्य विशेष की धरोहर समझे जाते हैं जिनमें मूलतः व प्रथमतः उनका आविर्भाव हुआ हो, किन्तु हिन्दी के विद्वानों ने प्रारंभिक काल में उसका उल्लेख इसलिए किया है कि इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यासकारों को एक दिशा है, उनके सामने उपन्यास का एक "माडल" रखा है। अतः प्रारंभिक काल में उनका उल्लेख किया है। अन्यथा अनूदित उपन्यास तो आज भी हिन्दी में आ रहे हैं, परन्तु परवर्ती कालों में इस प्रवृत्ति का उल्लेख किसीने नहीं किया है। इस कालखण्ड में मुख्यतः अंग्रेजी, बंगला, मराठी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं के उपन्यासों के हिन्दी अनुवाद हमें प्राप्त होते हैं। अंग्रेजी के रेनाल्ड्स के उपन्यास "लैला", "लंदन-रहस्य", "नर-पिशाच"; श्रीमती स्टो कृत "टाम काका की कुटिया" आदि उपन्यासों का अनुवाद हुआ। उर्दू से अनूदित होकर कई उपन्यास आये। मेहता लज्जाराम शर्मा ने गुजराती से "कपटी मित्र" नामक उपन्यास का अनुवाद किया। इस प्रकार इस काल-खण्ड में मौलिक उपन्यासों की तुलना में अनूदित उपन्यासों की संख्या ज्यादा मिलती है।

इस कालखण्ड के सामाजिक उपन्यासकार दो प्रकार के हैं — नवसुधारवादी और सनातनपंथी। नवसुधारवादी उपन्यासकारों में

पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी , लाला श्रीनिवासदास , बालकृष्ण भट्ट , ठाकुर जगमोहनसिंह , अयोध्यासिंह उपाध्याय , मन्नन द्विवेदी आदि लेखक आते हैं और सनातनपंथियों में राधाकृष्णदास , मेहता लज्जाराम शर्मा , किशोरीलाल गोस्वामी आदि की गणना कर सकते हैं । इस काल-खण्ड के चर्चित उपन्यासों में " भाग्यवती" , " परीक्षागुरु " , सौ अजान एक सुजान ﴾ बालकृष्ण भट्ट ﴿ , निस्सहाय हिन्दू " ﴾राधाकृष्णदास ﴿ , "आदर्श हिन्दू " ﴾ मेहता लज्जाराम शर्मा ﴿ , "राधाकान्त " ﴾ बाबू ब्रजनंदन सहाय ﴿ , "रामलाल" ﴾ मन्नन द्विवेदी ﴿ , "श्यामास्वप्न " ﴾ ठाकुरजगमोहन सिंह ﴿ , "त्रिवेणी या सौभाग्यवती " , "लीलावती या आदर्शसती " ﴾ किशोरीलाल गोस्वामी ﴿ आदि की गणना कर सकते हैं ।

इस कालखण्ड के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी , गंगाप्रसाद गुप्त , जयरामदासगुप्त , मथुराप्रसाद शर्मा, बलदेवप्रसाद मिश्र आदि उल्लेखनीय हैं और चर्चित ऐतिहासिक उप-न्यासों में "सुल्ताना रजिया बेगम " ﴾ किशोरीलाल गोस्वामी ﴿ , "नूरजहां" ﴾ गंगाप्रसाद गुप्त ﴿ , "मल्का चांदबीबी" ﴾ जयराम-दास गुप्त ﴿ , "अनारकली" ﴾ बलदेवप्रसाद मिश्र ﴿ , "पृथ्वीराज चौहान " ﴾ बलदेवप्रसाद मिश्र ﴿ आदि उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं । किन्तु इस कालखण्ड के ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक कम रम्याख्यान अधिक हैं , क्योंकि उनमें इतिहास कम कल्पना ज्यादा है ।[18] वस्तुतः वास्तविक सामाजिक उपन्यासों की भांति वास्तविक ऐतिहासिक उप-न्यासों का सूत्रपात भी प्रेमचन्दयुग में हुआ है ।

तिलस्मी उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री , दुर्गाप्रसाद खत्री ﴾देवकीनंदन खत्री के सुपुत्र ﴿ , हरेकृष्ण जौहर , किशोरीलाल गोस्वामी आदि की परिगणना कर सकते हैं । चर्चित तिलस्मी उपन्यासों में "चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता संतति " ﴾ देवकीनंदन खत्री ﴿ ,

"नारी-पिशाच" , " मयंकमोहिनी या मायामहल " (हरेकृष्ण जौहर) ; "तिलस्मी शीशमहल" (किशोरीलाल गोस्वामी) आदि की गणना की जा सकती है ।[19]

इस कालखण्ड की पांचवीं औपन्यासिक प्रवृत्ति है — जासूसी उपन्यास । जिसप्रकार तिलस्मी उपन्यास के लिए बाबू देवकीनंदन खत्री विख्यात हैं , ठीक उसी तरह जासूसी उपन्यासों के लिए बाबू गोपाल-राम गहमरी का नाम लिया जाता है । उनको हिन्दी का "कानन डायल" तक कहा गया है । जासूसी-लेखन के प्रति यह विशेष रूप से प्रतिश्रुत हैं । सन् 1900 में उन्होंने गहमर से "जासूस" नामक एक पत्रिका का प्रकाशन भी करवाया था । उन्होंने लगभग 200 जासूसी उपन्यास लिखे हैं , जिनमें "सरकती लाश " , " जमुना का खून" , " जासूस की भूल" , "गुप्तभेद" तथा " जासूस की ऐयारी " आदि उपन्यास काफी चर्चित रहे हैं । इनके अतिरिक्त "जासूस के घर खून" , (रामलाल वर्मा) , "जिन्दे की लाश " (किशोरीलाल गोस्मामी) , "लंगड़ा खूनी " (जयरामदास गुप्त) , "हम्माम का मुर्दा " (रामदास लाल) आदि जासूसी उपन्यास चर्चित रहे हैं । [20]

अनूदित उपन्यासों की तरह परवर्ती समय में तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का भी उल्लेख विद्वानों ने नहीं किया है , क्योंकि इनको स्तरीय व साहित्यिक उपन्यास नहीं माना जाता । प्रारं-भिक काल में उसकी नोंध इसलिए ली गई कि इन उपन्यासों ने उपन्यास-विधा को लोकप्रिय बनाया ।

प्रेमचन्दकाल (1918-1936 ई.) :

वस्तुतः हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव मुंशी प्रेमचन्द द्वारा ही प्राप्त हुआ । प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यासों का

किसी अन्य भाषा में अनुवाद नहीं हुआ था , किन्तु प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यासों के अनुवाद भी अन्य भाषाओं में होने लगे । इसका सीधा-सादा अर्थ यही निकलता है कि हिन्दी उपन्यास को भी इस लायक समझा गया । प्रेमचन्द ने यथार्थधर्मी समस्यामूलक उपन्यासों का सूत्रपात किया । न केवल उन्होंने उपन्यास लिखे , बल्कि अनेक लेखकों को प्रेरित किया और इस प्रकार एक युग का निर्माण किया । डा. रामविलास शर्मा के एक ग्रन्थ का नाम ही है — " प्रेमचन्द और उनका युग " ।

प्रेमचन्दयुग की औपन्यासिक प्रवृत्तियां मुख्यतः दो हैं — सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास । प्रेमचन्द के प्रमुख व चर्चित उपन्यास हैं — सेवासदन , वरदान , प्रतिज्ञा, ग़बन , निर्मला, प्रेमाश्रम , कायाकल्प , कर्मभूमि , रंगभूमि और गोदान । "मंगलसूत्र" उनका अपूर्ण उपन्यास है । इनमें "गोदान" को कृषक जीवन का महाकाव्य कहा गया है । प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन समाज की गालिबन तमाम-तमाम सामाजिक , राजनीतिक , आर्थिक , नैतिक समस्याओं का आकलन किया है । प्रेमचंदकाल के अन्य चर्चित सामाजिक उपन्यासों में "मां" , "भिखारिणी" (विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक ") ; "घण्टा" , "बुधुआ की बेटी " , "चन्द हसीनों के खूतत " (पांडेय बेचन शर्मा " उग्र ") ; "हृदय की परख " , "व्यभिचार" (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) ; "अनाथ पत्नी" , " पतिता की साधना " (भगवतीप्रसाद वाजपेयी) ; "दिल्ली का व्यभिचार" , "वेश्यापुत्र", "भाई" , "सत्याग्रह " , " तपोभूमि" (ऋषभचरण जैन) ; "कंकाल ", "तितली" , "इरावती" (अपूर्ण) - (जयशंकर प्रसाद) ; [illegible] "वेश्या का हृदय " (धनीराम प्रेम) ; "नारी हृदय " (शिवरानी देवी) ; "मदारी" (गोविन्दवल्लभ पंत) ; "गोद " , " अंतिम आकांक्षा " (सियारामशरण गुप्त) ; "अप्सरा" , "अलका" , "निरूपमा" (निराला) ; "लगन" , "प्रेम की भेंट " (वृन्दावनलाल वर्मा);

"पतन" , "चित्रलेखा" (भगवतीचरण वर्मा) ; "घृणामयी " (इलाचन्द्र जोशी) ; "परख" , "सुनीता " (जैनेन्द्र) आदि उपन्यासों की गणना कर सकते हैं । अंतिम तीन उपन्यासकारों का केवल प्रारंभिक औपन्यासिक लेखन ही प्रेमचंदयुग में आया था , अन्यथा उनके औपन्यासिक का पूरा विकास तो हमें प्रेमचन्दोत्तरकाल में ही मिलता है ।[21]

प्रेमचंदकाल की दूसरी औपन्यासिक प्रवृत्ति ऐतिहासिक उपन्यासों की है । जिस प्रकार वास्तविक सामाजिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंद युग में प्रेमचंद द्वारा हुआ , ठीक उसी प्रकार वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात भी प्रेमचंदयुग में ही वृन्दावनवर्मा के द्वारा हुआ । इस कालखण्ड में हमें दो ऐतिहासिक उपन्यासकार मिलते हैं -- वृन्दावनलाल वर्मा और आचार्य चतुरसेन शास्त्री । किन्तु इस युग में प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों का जादू सब पर ऐसा चढ़ा हुआ था कि उक्त दो उपन्यासकारों ने भी इस युग में ऐतिहासिक उपन्यास कम , सामाजिक उपन्यास ज्यादा दिए हैं । इस काल के चर्चित ऐतिहासिक उपन्यसों में "गदर" (ऋषभचरण जैन) ; "खवास का ब्याह " / पृथ्वीराज रासो की कथा पर आधारित है / (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) ; "गढ़कुण्डार" , "विराटा की पद्मिनी " (वृन्दावनलाल वर्मा) आदि की गणना कर सकते हैं । [22]

प्रेमचन्दोत्तरकाल (1936- अद्यावधि) :

प्रेमचन्दोत्तरकाल में हमें निम्नलिखित औपन्यासिक प्रवृत्तियां प्राप्त होती हैं — /1/ सामाजिक उपन्यास , /2/ ऐतिहासिक उपन्यास , /3/ मनोवैज्ञानिक उपन्यास , /4/ समाजवादी या मार्क्सवादी उपन्यास , /5/ राजनीतिक उपन्यास , /6/ पौराणिक उपन्यास , /7/ व्यंग्यात्मक उपन्यास , /8/ आंचलिक उपन्यास , /9/ साठोत्तरी उपन्यास और /10/ समकालीन उपन्यास । इनमें अंतिम दो प्रवृत्तियों में काल-विषयक अवधारणा भी समाविष्ट है । इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक

उपन्यास का एक उपभेद "जीवनीमूलक उपन्यास " का भी है । हमने इसकी गणना ऐतिहासिक के अन्तर्गत ही की है ।

/1/ सामाजिक उपन्यास :

सामाजिक उपन्यास की परंपरा तो प्रारंभ से ही शुरू हो गई थी। प्रायः सभी भाषाओं में उपन्यास का प्रारंभ सामाजिक उपन्यासों से ही होता है , यह अलग बात है कि गुजराती का प्रथम उपन्यास "करणघेलो" §नंदशंकर तुळ्जाशंकर मेहता § एक ऐतिहासिक उपन्यास है । प्रेमचन्दोत्तर काल के प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में "बेकसी का मजार " § प्रतापनारायण श्रीवास्तव § ; "राम-रहीम " § राजाराधिकारमणप्रसाद सिंह § ; "बिल्लेसुर बकरिहा" § निराला § ; "जूनिया" § गोविन्दवल्लभ पंत § ; "टेढ़े मेढ़े रास्ते " , "भूले बिसरे चित्र " , " वह फिर नहीं आयी " §भगवतीचरण वर्मा § ; " बूंद और समुद्र " , " ये कोठेवालियां " §अमृतलाल नागर § ; "गिरती दीवारें " , "गर्म राख " § अश्क § ; "घेरे के बाहर" § द्वारिकाप्रसाद एम.ए. § ; "निशिकान्त " § विष्णु प्रभाकर § ; " लोहे के पंख " § हिमांशु श्रीवास्तव § ; "खाली कुर्सी की आत्मा" § लक्ष्मीकान्त वर्मा § ; "एक मूठ सरसों" , " चौथी मुट्ठी § मटियानी § ; " रथ के पहिये " § देवेन्द्र सत्यार्थी § ; "डूबते मस्तूल " , " दो एकान्त " § नरेश मेहता § आदि उपन्यासों की गणना कर सकते हैं । [23] वैसे अन्य सामाजिक प्रकार के उपन्यासों का उल्लेख हम "साठोत्तरी" व "समकालीन" में भी करेंगे । अतः यहां पुनरार्तन को टाला गया है ।

/2/ ऐतिहासिक उपन्यास :

ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा हमें प्रारंभिक काल से ही मिलती है , किन्तु वास्तविक प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास तो प्रेमचंद काल से हमको प्राप्त होते हैं । प्रेमचन्दोत्तर काल के प्रमुख व चर्चित ऐतिहासिक उपन्यासों में "झांसी की रानी" , " अहिल्याबाई " , "महादजी सिंधिया " , " मृगनयनी " § वृन्दावनलाल वर्मा § ;

"गोली" , " पत्थरयुग के दो बुत " , "वैशाली की नगरवधू " , "सोमनाथ " , "सोना और खून " § आचार्य चतुरसेन शास्त्री § ; "गदर" §ऋषभचरण जैन § ; "इरावती" § अपूर्ण - जयशंकर प्रसाद § ; "सुहाग के नूपुर § अमृतलाल नागर § ; "मानस का हंस " , " खंजननयन " §अमृतलाल नागर § ; " दिव्या " , "अमीता " § यशपाल § ; "मुर्दों का टीला " § डा. रांगेय राघव § ; "सिंह सेनापति " , " जय यौद्धेय " § महापंडित राहुल सांकृत्यायन § ; "बाणभट्ट की आत्मकथा" , "चारु चन्द्रलेख " , पुनर्नवा " § आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी § ; "बहती" गंगा" § शिवप्रसाद मिश्र § ; "शतरंज के मोहरे " § अमृतलाल नागर § ; "सामन्त बीजगुप्त " , " इरावती " § बनकाम सुनोल - इरावती में प्रसादजी के अपूर्ण उपन्यास "इरावती" को पूर्ण किया गया है । § ; "नीला चांद " § डा. शिवप्रसादसिंह § ; "पहला सूरज " , "गुरु ग× " गोविन्दगाथा " , "देख कबिरा रोया " , "पीताम्बरा " §डा. भगवतीशरण मिश्र § ; नाना फड़नवीस § उमाशंकर § ; जहांदार शाह " § वाल्मीकि त्रिपाठी § ; "प्रवीनराय" § अमरबहादुर सिंह "अमरेश " § ; "राणा सांगा " , "बप्पा रावल " § मनुशर्मा § ; आचार्य चाणक्य " § सत्यकेतु विद्यालंकार § ; "आचार्य चाणक्य " §डा. यतीन्द्र § ; "चेतसिंह का सपना " § गिरिजाशंकर पाण्डेय § ; "मगध की जय " , "अक्षत" § डा. शिवसागर मिश्र § आदि उपन्यासों की गणना कर सकते हैं । 24

/3/ <u>मनोवैज्ञानिक उपन्यास :</u>

यद्यपि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात तो प्रेमचंद युग में ही हो गया था , तथापि उसका विकास तो प्रेमचन्दोत्तर काल में ही हुआ है । ध्यान रहे मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी होते तो सामाजिक उपन्यास ही हैं , किन्तु उनमें तवज्जो मनोवैज्ञानिक विषयों पर रहता है । उनमें मनोवैज्ञानिक विषय-वस्तु , मनोवैज्ञानिक समस्याओं , मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों तथा मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरूपण रहता है ।

इस कालखण्ड के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में संन्यासी" , पर्दे की रानी " , प्रेत और छाया " , "जहाज का पंछी " ﴾ इलाचन्द्र जोशी ﴿ ; "शेखर एक जीवनी भाग-1 ,2 " , "नदी के द्वीप " ﴾अज्ञेय ﴿ ; "बाहर-भीतर" , " भीतर का घाव " , " अजय की डायरी " ﴾ डा. देवराज ﴿ ; "त्यागपत्र" , कल्याणी" , सुखदा" , "जयवर्द्धन" , "मुक्तिबोध" , "अनामस्वामी" ﴾ जैनेन्द्र ﴿ ; "दो एकान्त" ﴾नरेश मेहता ﴿ ; "परन्तु" , "द्वाभा" , "साँचा" ﴾ प्रभाकर माचवे ﴿ ; "उसका बचपन" ﴾ कृष्ण बलदेव वैद ﴿ ; आदि की गणना कर सकते हैं । साठोत्तरी और समकालीन उपन्यासों में भी कई मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं जिनका जिक्र यथेष्ट स्थान पर किया जायेगा । एक और बात भी यहां ध्यातव्य है कि यह श्रेणी-विभाजन कोई " वाटर टाईप कम्पार्टमेण्ट " तो है नहीं , एक ही उपन्यास अलग-अलग श्रेणियों में आ सकते हैं और एकाधिक श्रेणियों में भी आ सकते हैं । (25)

/4/ समाजवादी या मार्क्सवादी उपन्यास :

समाजवादी उपन्यास भी सामाजिक-ऐतिहासिक आदि हो सकते हैं , किन्तु उनमें मुख्य बात विचारधारा की रहती है । संक्षेप में हम उन उपन्यासों को समाजवादी-मार्क्सवादी कह सकते हैं जिनमें मार्क्सवादी विचारधारा प्रतिबिम्बित हुई है । प्रमुख समाजवादी उपन्यासों में "दादा कामरेड " , "पार्टी कामरेड " , "मनुष्य के रूप " , "झूठा सच " , "दिव्या " , अमिता " ﴾ यशपाल﴿ ; "जय यौद्धेय " , " सिंह सेनापति" ﴾ राहुल सांकृत्यायन ﴿ ; "मुर्दों का टीला" , " विषादमठ " , " सीधा सादा रास्ता" , "कब तक पुकारूं " ﴾ डा. रांगेय राघव ﴿ ; "रतिनाथ की चाची " , "बलचनमा" , " दुखमोचन" , "वरुण के बेटे " कुंभीपाक" ﴾ नागार्जुन ﴿; "मसाल" , "गंगामैया" , " सती मैया का चौरा" ﴾ भैरवप्रसाद गुप्त ﴿ ; "बीज" , " हाथी के दांत " ﴾ अमृतराय ﴿ ; "सूरज का सातवां घोड़ा " ﴾ धर्मवीर भारती ﴿ ; " काले फूल का पौधा"

"रूपाजीवा" , " प्रेम अपवित्र नदी" ‡ लक्ष्मीनारायण लाल ‡ ; "प्रेत बोलते हैं " , " उखड़े हुए लोग " , " कुलटा " , "शह और मात" , "सारा आकाश " ‡ राजेन्द्र यादव ‡ ; "मैला आंचल " , "परती परिकथा " , " दीर्घतपा" ‡ रेणु ‡ ; "अलग अलग वैतरणी " ‡डा. शिवप्रसाद सिंह ‡ ;"शहीद और शोहदे " ‡ मन्मथनाथ गुप्त ‡ आदि उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं । साठोत्तरी और समकालीन उपन्यासों में भी कई मार्क्सवादी धारा के उपन्यास मिलते हैं ।[26]

/5/ राजनीतिक उपन्यास :

वैसे राजनीतिक उपन्यासों का सूत्रपात भी बहुत-से विद्वान प्रेमचन्दकाल से ही मानते हैं । "प्रेमाश्रम" को हिन्दी का प्रथम राजनीतिक उपन्यास माना गया है । राजनीतिक उपन्यास भी सामाजिक उपन्यास ही होते हैं , किन्तु जहां विषय-वस्तु में राजनीतिक विचारधाराओं , राजनीतिक पात्रों , निकटवर्ती इतिहास को लिया जाता है , वहां उन उपन्यासों को राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है । "टेढ़े मेढ़े रास्ते " , " भूले बिसरे चित्र " , " प्रश्न और मरीचिका " , "सबहिं नचावत राम गोसाईं " ‡ भगवतीचरण वर्मा ‡ ; "अमृत और विष " , " नाच्यौ बहुत गोपाल " ‡ अमृतलाल नागर ‡ ; " झूठा सच " , " मेरी तेरी उसकी बात " ‡यशपाल ‡ ; " एक पंखुड़ी की तेज धार " ‡ शमशेरसिंह नरूला ‡ ; "विषादमठ" , " सीधा सादा रास्ता " ‡ डा. रांगेय राघव ‡ ; "महाभोज " ‡ मन्नू भंडारी ‡ [27] बहुत-से राजनीतिक उपन्यास साठोत्तरी और समकालीन उपन्यासों में भी मिल सकते हैं ।

/6/ पौराणिक उपन्यास :

जो उपन्यास पौराणिक विषय-वस्तु पर आधारित होते हैं उनको पौराणिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है । ऐतिहासिक उपन्यास और xxx पौराणिक उपन्यास में उतना ही अंतर है ,

जितना कि इतिहास और पुराण में है । हिन्दी के कई विद्वान ऐति-हासिक और पौराणिक के बीच कोई भेद नहीं करते हैं , जैसे कि डा. रामदरस मिश्र ने "हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा " में पौराणिक उपन्यासों को भी ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में ही रखा है । [28] उन्होंने डा नरेन्द्र के रामायण पर आधारित दीक्षा अवसर , युद्ध की ओर , युद्ध आदि उपन्यासों को तथा कृष्ण-सुदामा की कथा पर आधारित "अभिज्ञान" को ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा है । किन्तु हम डा. नरेन्द्र कोहली के रामायण ~~xxxxxx~~ महाभारत पर आधारित उपन्यासों को पौराणिक मानते हैं । हमारा आलोच्य विषय इसी से सम्बद्ध है , अतः इसी अध्याय में यथेष्ट स्थान पर उसकी विस्तृत चर्चा की जायेगी । प्रमुख पौराणिक उपन्यासों में डा. नरेन्द्र कोहली के रामायण की कथा पर आधारित "दीक्षा" , "अवसर" , " संघर्ष की ओर " और "युद्ध " तथा महाभारत की कथापर आधारित "महासमर " भाग-1 से 8 : "महासमर-1 / बंधन / , "महासमर-2 /अधिकार/ " , "महासमर-3 / कर्म / " , " महासमर-4 / धर्म / " , " महा-समर"- 5 /अंतराल / " , " महासमर-6 / प्रच्छन्न / " , "महासमर-7 / प्रत्यक्ष / " तथा "महासमर-8 / निर्बन्ध / आदि उपन्यास ; आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत "अनामदास का पोथा ", डा. भगवतीशरण मिश्र कृत "प्रथम पुरुष " तथा " पवनपुत्र " ; आचार्य चतुरसेन कृत " वयं रक्षामः " , मनु शर्मा कृत द्रौपदी की आत्म-कथा " , " द्रोण की आत्मकथा " , " कर्ण की आत्मकथा " , "कृष्ण की आत्मकथा भाग-1 5 " ; युगेश्वर कृत "सीता एक जीवन ", "हनुमान एक जीवन " , " राम एक जीवन " , "रावण एक जीवन " प्रभृति की गणना की जा सकती है । [29]

/7/ व्यंगयात्मक उपन्यास : उपन्यास की गणना "विरोध का साहित्य (Literature of Discard) के रूप में हुई है और "व्यंग्य" तो विरोध का एक सशक्त हथियार

है , अतः अपने प्रारंभ काल से ही उपन्यास में व्यंग्य तो मिलता ही है । किन्तु किसी उपन्यास को "व्यंग्यात्मक उपन्यास " की संज्ञा तब मिलती है , जब उसका प्रधान सूर व्यंग्य का हो । वह आद्यन्त व्यंग्य-वाक्यों , व्यंग्य-प्रसंगों तथा व्यंग्य पात्रों से भरा हुआ हो । स्वाधीनता के पश्चात् जो आचार-विचार , कथनी-करनी का अंतर व भ्रष्टाचार चला उसके रहते व्यंग्यात्मक साहित्य का परिमाण पहले के किसी भी युग से बढ़ गया । श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास " राग दरबारी" को व्यंग्यात्मक उपन्यासों का प्रतिमान माना जाता है । [30] "राग दरबारी के अतिरिक्त प्रमुख व्यंग्यात्मक उपन्यासों में "कथा-सूर्य की नयी यात्रा " , "दिल एक सादा कागज " , " एक चूहे की मौत " "जंगलतंत्रम् " , "नेताजी कहिन " , " कुरु-कुरु स्वाहा " , "सबहिं नचावत रामगोसाई " , "टोपी शुक्ला" , " एक गधी की आत्मकथा" "किस्सा तोता पढ़ाने का " , " एक उलूक कथा" , "हीरक जयंती " , "धपेलबाबा " आदि की गणना कर सकते हैं जिनके लेखक हैं क्रमशः हिमांशु श्रीवास्तव , डा. राही मासूम रज़ा , बदी उज्जमां , श्रवणकुमार गोस्वामी " , मनोहरश्याम जोशी , ~~मनोहरश्याम जोशी~~, भगवतीचरण वर्मा , डा. राही मासूम रज़ा , पुरुषोत्तमदास गौड़ , हंसराज रहबर , डा. श्यामसुंदर घोष , नागार्जुन , श्यामबिहारी " ।

/8/ आंचलिक उपन्यास :

देशकाल या वातावरण तो उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है , अतः प्रत्येक उपन्यास में "देश" (स्थान) और "काल" (समय) तो होता ही है , फिर यह आंचलिक उपन्यास का क्या तात्पर्य ? क्योंकि "अंचल" तो प्रत्येक उपन्यास में होता है । किन्तु कोई उपन्यास "आंचलिक उपन्यास " तब कहलाता है जब उसमें किसी अंचल-विशेष का चित्रण समग्रता के साथ होता है । दूसरे शब्दों में कहें तो वहां " अंचल " ही उपन्यास का नायक होता है । इस

शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फणीश्वरनाथ रेणु ने किया था अपने उपन्यास "मैला आंचल " के संदर्भ में । जिस प्रकार "राग दरबारी " व्यंग्यात्मक उपन्यासों का प्रतिमान है , ठीक उसी प्रकार "मैला आंचल " आंचलिक उपन्यासों का प्रतिमान है । प्रमुख चर्चित आंचलिक उपन्यासों में "मैला आंचल " , " परती परिकथा " (रेणु) ; "वरुण के बेटे " (नागार्जुन) ; " हौलदार " (शैलेश मटियानी) ; "सागर लहरें और मनुष्य " (उदयशंकर भट्ट) ; " जंगल के फूल " (राजेन्द्र अवस्थी), "अलग अलग वैतरणी " (डा. शिवप्रसाद सिंह) , "आधा गांव " (डा. राही मासूम रज़ा) आदि की गणना कर सकते हैं ।

/9/ साठोत्तरी उपन्यास :

"साठोत्तरी उपन्यास " में सामाजिक , मार्क्सवादी , मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार के उपन्यास आ सकते हैं । मोटे तौर पर जो उपन्यास सन् साठ के बाद आये हैं उनको साठोत्तरी कहा जाता है । किन्तु यहां एक तथ्य का ध्यान रखना होगा कि साठोत्तरी उपन्यास निश्चयतः साठ के बाद का तो होगा , किन्तु ~~प्रत्येक~~ साठ के बाद का ~~xxxxxx~~ प्रत्येक उपन्यास साठोत्तरी नहीं हो सकता । किसी उपन्यास को साठोत्तरी होने की पहली शर्त यह है कि उसमें साठोत्तरी मानसिकता होनी चाहिए । कोई उपन्यास भले साठ के बाद लिखा गया है , पर यदि उसमें साठोत्तरी मानसिकता का अभाव है , या आधुनिक भावबोध का अभाव है और किसी दकियानुस विचारधारा को लेकर लिखा गया है तो साठ के बाद का होने के बावजूद उसे साठोत्तरी नहीं कहा जा सकता । सन् 1961 से सन् 1980 तक के आधुनिक भावबोध संपन्न उपन्यासों को साठोत्तरी की संज्ञा दी गई है । प्रमुख चर्चित साठोत्तरी उपन्यासों में "शहर में घूमता आईना" (अश्क) ; "नदी फिर बह चली " (हिमांशु श्रीवास्तव) ; "रेखा " (भगवतीचरण वर्मा) , "यह पथ बंधु था " (नरेश मेहता) , "काला जल " (शानी) , "सूरजमुखी अंधेरे के " (कृष्णा सोबती) , "प्रेम

अपवित्र नदी " § लक्ष्मीनारायण लाल § , "टेराकोटा " § लक्ष्मीकांत वर्मा § , "अनदेखे अनजान पुल " § राजेन्द्र यादव § , "अपने अपने अजनबी " § अज्ञेय § , "इमरतिया" , "उग्रतारा " § नागार्जुन § ; "मेरी तेरी उसकी बात " § यशपाल § , " अलग अलग वैतरणी " §डा. शिवप्रसाद सिंह § , "राग दरबारी " § श्रीलाल शुक्ल § , "आधा गांव " § डा. राही मासूम रज़ा § , " जल टूटता हुआ " §डा. रामदरश मिश्र § , "धरती धन न अपना " § जगदीशचन्द्र § , "तमस " § भीष्म साहनी § , "मछली मरी हुई " § राजकमल चौधरी§, "अठारह सूरज के पौधे " § रमेश बक्षी § , "पचपन खंभे लाल दीवारें", "रूकोगी नहीं राधिका ? " § उषा प्रियंवदा § ; " डाक बंगला " , "आगामी अतीत" § कमलेश्वर § ; "अंधेरे बन्द कमरे " § मोहन राकेश § , "वे दिन " § निर्मल वर्मा § , "यात्राएँ " § गिरिराज किशोर § , "आपका बण्टी" , " महाभोज " § मन्नू भण्डारी § ; " एक चूहे की मौत " § बदी उज्जमां § , "मुर्दाघर " आदि उपन्यासों की गणना कर सकते हैं । [32]

/10/ समकालीन उपन्यास :

साठोत्तरी उपन्यास की भांति इसमें भी काल-विषयक विभावना मौजूद है । मोटे तौर पर सन् 1980 के बाद के इधर के जो उपन्यास हैं उनको समकालीन §Contemporary § की संज्ञा दी गई है । किन्तु यहां भी उसी बात का ध्यान रखना होगा की उसमें समकालीन चेतना-संपन्नता होनी चाहिए । उपन्यास क्यों न 2005 या 2006 में लिखा गया हो , लेकिन यदि उसमें समकालीन चेतना का अभाव है तो उसे समकालीन उपन्यास नहीं कहा जायेगा । प्रमुख समकालीन उपन्यासों में "बेघर" , " नरक दर नरक " § ममता कालिया § ; "कोहरे " , " प्रिया" § दीप्ति खंडेलवाल § ; "उसके हिस्से की धूप " , " चित्तकोबरा. " § मृदुला गर्ग § ,; "उसकी

पंचवटी " ﴾ कुसुम अंसल ﴿ ; "अनारो " ﴾ मंजुल भगत ﴿ ; "टुकड़ों में बंटा इन्द्रधनुष " ﴾ प्रभा सक्सेना ﴿ ; " रेत की मछली " ﴾ कान्ता भारती ﴿ ; "आंखों की ~~देहलम~~ देहलीज " ﴾ मेहरून्निसा परवेज ﴿ ; "पतझड़ की आवाजें " ﴾ निरूपमा सेवती ﴿ ; "नावें " ﴾ शशिप्रभा ~~श्रम~~ शास्त्री ﴿; "तत्सम" ﴾ राजी सेठ ﴿ ; " ढहती दीवारें " ﴾मीना दास ﴿ ; [33] " मुझे चांद चाहिए " ﴾ सुरेन्द्र वर्मा ﴿ ; "इदन्नमम " , " अल्मा कबूतरी " ﴾ मैत्रेयी पुष्पा ﴿ ; "रात का रिपोर्टर " ﴾ निर्मल वर्मा ﴿ ; "शहर में कर्फ़्यू " ﴾ विभूतिनारायण राय ﴿ ; " धपेलबाबा" ﴾ श्याम बिहारी ﴿ ; "आखिरी कलाम " ﴾दूधनाथसिंह ﴿ ; "आखिरी सलाम " ﴾ मधु कांकरिया ﴿ ; "काशी का अस्सी " ﴾ काशीनाथसिंह ﴿ ; "सात आसमान " ﴾ असगर वजाहत ﴿ ; "काला पहाड़ " , " बाबल तेरा देश में " ﴾ भगवानदास मोरवाल ﴿ ; " पिछले पन्ने की औरतें " ﴾ सुश्री शरदसिंह ﴿ ; छिन्नमस्ता" , " पीली कोठी " ﴾ प्रभा खेतान ﴿ ; "नरवानर " ﴾शरणकुमार लिम्बाले ﴿ ; " सावधान , नीचे आग है "×﴿ , "जंगल जहां शुरू होता है " ﴾ संजीव ﴿ ; "आग पानी आकाश " ﴾ रामधारी सिंह दिवाकर ﴿ ; "अपनी सलीबें " ﴾ नमिता सिंह ﴿ ; "जिबह" , " शहर चुप है " ﴾ मुशर्रफ आलम जौकी ﴿ ; "मीरा याज्ञिक की डायरी " ﴾ बिन्दु भट्ट ﴿ [34] आदि को उल्लेखनीय कहा जा सकता है ।

डा. नरेन्द्र कोहली का रचनाकाल :

हमारा आलोच्य विषय डा. नरेन्द्र कोहली के रामायण तथा महाभारत पर आधारित उपन्यासों से सम्बद्ध है , अतः उनके रचना समय पर एक दृष्टिपात करना अनुचित न होगा । उनका जन्म 6 जनवरी , 1940 ई. में सियालकोट में हुआ था । सियालकोट अब पाकिस्तान में है । अतः उनके परिवार को सियालकोट छोड़कर ~~दिल्ली~~ ~~अम×~~ , अर्थात् पाकिस्तान छोड़कर भारत आना पड़ा होगा और भारत-पाकिस्तान विभाजन की विभीषिकाओं से भी दो-चार

होना पड़ा होगा । यदि मोटे तौर पर हम यह मान लें कि 25 साल की उम्र से उनका लेखन शुरू हुआ होगा , तो गालिबन 1965 से उनका लेखन-काल या रचना काल शुरू होता है । डा० नरेन्द्र कोहली के अनेक रूप हैं । वे व्यंग्यकार , कथाकार , निबंधकार , आलोचक , नाटककार और उपन्यासकार हैं । परवर्ती अध्याय में उनके कृतित्व पर विस्तार से विचार होगा , अतः यहां केवल बहुत संक्षेप में यह कह देना है कि सन् 1966 में उनका एम.ए. का लघु शोध-प्रबंध (Dissertation) "प्रेमचन्द के सिद्धान्त " प्रकाशित हुआ । सन् 1969 में उनका पहला कहानी-संग्रह "परिणति" प्रकाशित हुआ । इसके अतिरिक्त "एक और लाल तिकोन " , " पांच एब्सर्ड उपन्यास" , "पुनरारंभ", "साथ सहा गया दुःख" , " आश्रितों का विद्रोह " , " आतंक" आदि रचनाएं प्रकाशित हुईं । डा. नरेन्द्र कोहली पर सन् 1971 के युद्ध का बड़ा गहरा असर पड़ा था । पाकिस्तानी सेनाओं द्वारा बुद्धिजीवियों की जो हत्याएं की गयी थीं उनसे वे पूरी तरह से हिल गए थे और इन्हीं कारणों से उनके भीतर का "विश्वामित्र" पुनः जाग गया और उनके भीतर राम-कथा अधिक-से-अधिक मुखर होती गई । सन् 1975 में रामायण महाग्रन्थ पर आधारित उपन्यास-श्रृंखला का पहला उपन्यास "दीक्षा" प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास के प्रकाशन और ख्याति से उनके लेखन की दिशा ही बदल गई और उन्होंने उसी क्रम में "अवसर", "संघर्ष की ओर " , " युद्ध " आदि उपन्यास दिए । उसके बाद महाभारत को लेकर उन्होंने आठ उपन्यास दिए । इधर विवेकानंद के जीवन पर आधृत उपन्यास " तोड़ो , कारा तोड़ो " भाग-1 और 2 क्रमशः "निर्माण" और "साधना" उपशीर्षकों के साथ दिए हैं । [35]

<u>पौराणिक उपन्यास :</u> जिस प्रकार आंचलिक उपन्यास का सूत्रपात रेणु से , व्यंग्यात्मक उपन्यास का सूत्रपात श्रीलाल शुक्ल से माना जाता है ; ठीक उसी तरह पौराणिक उपन्यास का

सूत्रपात डा. नरेन्द्र कोहली से यदि माना जाए तो असंगत कुछ न होगा । उन्होंने पौराणिक उपन्यास को एक दिशा दी । पूर्ववर्ती पृष्ठों में बताया गया है कि हिन्दी के कई विद्वान पौराणिक उपन्यास को भी ऐतिहासिक उपन्यास की ही श्रेणी में रखते हैं । डा. रामदरस मिश्र ने " हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा " में यही किया है । उन्होंने डा. नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों को ऐति-हासिक उपन्यास करार दिया है और उसके कारण वे उनके साथ उचित न्याय नहीं कर पाए हैं , क्योंकि केवल "दीक्षा" उप-न्यास की अति-संक्षिप्त चर्चा करके उनके तब तक प्रकाशित अन्य उप-न्यासों को "अन्य उपन्यास " के खाते में डालकर केवल उल्लेखभर कर दिया है ।[36] डा. एस.एन. गणेशन के महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबंध "हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन " में भी पौराणिक उपन्यासों का कोई उल्लेख नहीं है । उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास के संदर्भ में "ऐतिहासिक-सांस्कृतिक " उपन्यास ऐसा शब्द जरूर दिया है ।[37] वस्तुतः किसी लेखक का यह कथन कई बार शत-प्रतिशत सत्य प्रतीत होता है कि उपन्यास के तत्वों से ही हिन्दी उपन्यास का विकास हुआ है , जैसे कथावस्तु के आधार पर सामाजिक - ऐतिहासिक आदि ; चरित्र-चित्रण से मनोवैज्ञानिक उपन्यास , देशकाल से आंचलिक उपन्यास , विचार और जीवन-दर्शन से मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी उपन्यास भाषा-शैली और शिल्प से प्रयोगवादी-प्रतीकवादी और नाटकीय उपन्यास आदि-आदि । इस दृष्टि से सोचें तो पौराणिक उपन्यास भी ऐतिहासिक उपन्यास की भांति विषय-वस्तु या कथावस्तु से संबंध रखता है । जहां कथावस्तु सामाजिक या समसामयिक होता है , वहां उसे सामाजिक उपन्यास कहते हैं और जहां कथावस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक होता है , वहां उन-उन उपन्यासों को ऐतिहासिक और पौराणिक कहते हैं । जो लोग इतिहास और पुराण में अंतर नहीं करते , नहीं कर सकते , या किसी निश्चित योजना के तहत करना नहीं चाहते वे लोग ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक उपन्यास में

भी कोई अंतर नहीं समझते और पौराणिक उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं ।

डा. भगवतीशरण मिश्र अपने पौराणिक उपन्यास " प्रथम पुरुष " की भूमिका में लिखते हैं — " पुराण और इतिहास में यद्यपि अंतर नहीं है क्योंकि पुराणों का आधार भी इतिहास ही होता है किन्तु पुराणकारों की यह विशेषता होती है कि वे अतिशयोक्तियों और रूपकों का सहारा लेकर ऐतिहासिक गाथा को सामान्य जन के मध्य लोकप्रिय बनाने का प्रयास करते हैं । साथ ही जो पुराण जिस व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित होता है , उसीको वह सर्वोपरि मानता है और उसे ईश्वर तक पहुंचाने का प्रयास करता है । ऐसी स्थिति में अगर पुराणों को अतिशयोक्तियों और अनावश्यक रूपकों से मुक्त कर दिया जाए तो पौराणिक आख्यान भी इतिहास की प्रामाणिकता प्राप्त कर सकते हैं और पौराणिक उपन्यास भी ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में आ सकते हैं । मैं यह कहने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा कि मैंने इस उपन्यास को पौराणिक कम ऐतिहासिक अधिक बनाने का प्रयास किया है । दूसरे शब्दों में मैं इसे पौराणिक उपन्यास कहने के बदले ऐतिहासिक उपन्यास कहना अधिक पसंद करूंगा ।" [38]

डा. मिश्र के उपर्युक्त कथन में कई सारे अन्तर्विरोध हैं । "पुराण और इतिहास में यद्यपि अंतर नहीं है " — उनके इस वाक्य में "यद्यपि" इस बात को प्रमाणित करता है कि वस्तुतः अंतर है । अन्यथा वे सीधे कहते कि "पुराण और इतिहास में अंतर नहीं है । " दूसरे वह कहते हैं कि पुराणों का आधार भी इतिहास है । वस्तुतः यह कथन अपने आप में गलत है । पुराणों के आधार पर इतिहास की खोज की जा सकती है । जिस दिन यह खोज पूरी हो जायेगी उस दिन वह "पुराण" इतिहास में परिवर्तित होगा , पर जब तक ऐसा नहीं होता है वह पुराण ही रहेगा । उपन्यास यथार्थ घटनाओं पर आधारित होता है , उसमें एक क्रोनोलोजिकल आर्डर होता है । शिवाजी का जन्म सन् 1627 ई. में हुआ या

या सन् 1630 ई. में उस मुद्दे पर इतिहासकार महीनों और सालों बहस चला सकते हैं और अनेक पृष्ठों में उसकी चर्चा कर सकते हैं, जबकि दूसरी तरफ पुराणों में काल की इस प्रकार की कोई अवधारणा ही स्पष्ट नहीं है। डा. मिश्र स्वयं इस तथ्य का स्वीकार कर रहे हैं कि पुराणों में अतिशयोक्तियों और रूपकों का सxxxx सहारा लिया जाता है, जबकि दूसरी ओर इतिहासकार के लिए इन दोनों वस्तुओं का कोई महत्व नहीं है। वह तो "Matter of facts" में विश्वास रखता है। डा. मिश्र कहते हैं कि जो पुराण जिस व्यक्ति-विशेष को लेकर लिखा गया है वह उसीको सर्वोपरि मानता है और उसे ईश्वर तक पहुंचाने का प्रयास करता है। दूसरी ओर इतिहासकार ऐसा नहीं कर सकता। वह दो महान ऐतिहासिक व्यक्तियों की तुलना तथ्यात्मक दृष्टि से और विश्लेषणात्मक ढंग से कर सकता है। और यदि किसीको महान मानता है तो उसके लिए तथ्य और प्रमाण सहित बात करेगा। केवल "हवामें गोलीबार करना यह इतिहासकार का "Moto" कदापि नहीं हो सकता। डा. मिश्र कहते हैं कि "मैंने इस उपन्यास को पौराणिक कम ऐतिहासिक अधिक बनाने का प्रयास किया है।" अर्थात् वह स्वयं इसे "पौराणिक" तो मानते ही हैं। और जिसे वह अपना प्रयास कहते हैं, वह तो हर पौराणिक उपन्यासकार को करना ही पड़ता है, क्योंकि तभी तो वह उपन्यास बन पायेगा। उपन्यास का पहला और केवल पहला सरोकार यथार्थ के साथ है। अतः प्रत्येक पौराणिक उपन्यासकार उसे यथार्थ बनाने की चेष्टा करता है, आधु-निक दृष्टि से उसका अर्थघटन करता है, और वह एक सीमा तक यह कर भी पाये हैं। लेकिन यह तो उपन्यास की एक प्राथमिक शर्त है। उपन्यासकार यथार्थ से मुंह नहीं चुरा सकता। कहीं चरित्रांकन में वह आदर्शवाद का सहारा लेता है, लेकिन उसका वह आदर्शवाद भी "यथार्थ" की भूमि पर ही खड़ा होता है। और लेखक ने उसे "ऐति-हासिक" बनाने का प्रयत्न तो बिल्कुल नहीं किया है, क्योंकि उपर्युक्त पंक्तियों के पूर्व भूमिका में ही वे लिखते हैं —" कृष्ण-चरित्र मुख्यतः छः ग्रन्थों में प्राप्त होता है — ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण,

महाभारत पुराण , ब्रह्मवैवर्त पुराण , हरिवंश पुराण , और श्रीमद्भागवत पुराण । इनके अलावा गर्ग संहिता एवं पद्मपुराण में भी श्रीकृष्णकथा विस्तार से मिलती है । इन पुराणों में ब्रह्मपुराण और विष्णुपुराण में कथा प्रायः एक-सी है , ~~हरिवंश हरिवंश~~ हरिवंश पुराण , ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा श्रमद्भागवत की कथा कुछ हद तक मिलती-जुलती है ।" [39] यहां उन्होंने जिन ग्रन्थों का हवाला दिया है , वे तमाम के तमाम ग्रन्थ पुराण-ग्रन्थ हैं । इतिहास का ग्रन्थ एक भी नहीं है । "पीतांबरा" उपन्यास (उनका ही) मीराबाई के जीवन-कवन पर आधारित है , वहां लेखक ने मीराबाई के इतिहास पर काम किया है , अन्वेषण किया है । यदि कोई पाठक इन दो उपन्यासों (प्रथम पुरुष और पीतांबरा) की भूमिका ही देख जाए तो उसे ऐतिहासिक उपन्यास और पौरा-णिक उपन्यास का अंतर समझ में आ जाए ।

ऐतिहासिक उपन्यास क्या चीज है और उसके लेखन में लेखक को कितनी जेहमत उठानी पड़ती है उसका ख्याल निम्नलिखित कथन से आयेगा कि "झांसी की रानी" (1956) उपन्यास महाश्वेता-देवी ने किस प्रकार लिखा था — " महाश्वेतादेवी ने अपना पहला उपन्यास "झांसी की रानी " 1956 में लिखा था । लक्ष्मीबाई पर यह उपन्यास इतिहास की किसी भी पुस्तक पर भारी पड़ेगा । गहन शोध , समर्पण , प्रतिबद्धता और श्रम के साथ , इतिहास के सूक्ष्म-तम तत्वों का प्रामाणिक स्रोतों से समर्थन पाने व विवेचन करने के बाद , महाश्वेता ने इस उपन्यास को लिखा है , लक्ष्मीबाई के जीवन के वे पक्ष , जिनका अभी ऊपर जिक्र हुआ है और जो उनकी स्वीकृत छवि पर कुछ प्रश्न उठाते हैं , सबको महाश्वेता ने अपने उपन्यास में लिया है , ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन का यह सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । उपन्यास के अन्त में संदर्भ ग्रन्थों की सूची में इंग्लिश की 25 , बंगला की 4 , मराठी की 2 व हिन्दी-बुंदेलखण्डी की 5 पुस्तकें हैं । विभिन्न सरकारी गजेटियर , संसदीय पत्र व अभिलेख हैं । इनके अतिरिक्त 26 वर्ष की आयु में अकेले झांसी , ग्वालियर , कालपी , जबलपुर , पूना ,

इन्दौर की बीहड़ यात्राएं व साक्षात्कार हैं । यह जानना दिलचस्प है कि सावरकर के लिखे 1857 के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास को पढ़कर महाश्वेता ने इस उपन्यास को लिखने की प्रेरणा पाई , पर उन्होंने वह गलती नहीं कि जो वृन्दावनलाल वर्मा ने की । उनकी लक्ष्मीबाई "इतिहास को जीनेवाली नायिका है " , रचने वाली नहीं ।" 40

कहने का अभिप्राय यह कि ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक उपन्यास ये दोनों अलग-अलग औपन्यासिक प्रकार हैं और यदि कोई लेखक पौराणिक उपन्यास में आधुनिक भावबोध , नवीन अर्थघटन , वैज्ञानिक चिंतन , तार्किक संगति आदि लाने का प्रयत्न करता है और चमत्कारिक घटनाओं का निरसन करता है तो उससे वह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं हो सकता , क्योंकि ये सब करना उपन्यास-सृजन की बुनियादी शर्तें हैं । पौराणिक उपन्यास के जनक डा. नरेन्द्र कोहली "दीक्षा" की सृजन-यात्रा के संदर्भ में उसके आधुनिक-वैज्ञानिक अर्थघटन के संदर्भ में स्वयं बताते हैं —

" हमारे सारे मिथकों में महान शस्त्रों के देनेवाले शिव हैं ... निश्चित रूप से वे एक विकसित शस्त्रशाला (Ordinance Factory) के प्रतीक हैं । अतः यह शिवधनुष भी कोई विचित्र यंत्र ही होना चाहिए, जिसे सीरध्वज ने युद्ध में प्रयुक्त नहीं किया और शोभा की वस्तु बना दिया , जिसे सैकड़ों मनुष्य और पशु खींचकर रंगस्थली में लाते हैं , और पसीना-पसीना हो जाते हैं । मैंने शिव-धनुष को , आधुनिक (टैंक जैसे किसी यंत्र के रूप में स्वीकार किया है । यह प्रत्येक बात का हठपूर्वक आधुनिक समाधान देने का प्रयत्न नहीं है ; यह शिव के महान शस्त्र-निर्माता रूप को दृष्टि में रखकर , आगे की घटनाओं की पृष्ठभूमि स्वरूप की गई कल्पना है । राम-रावण के अंतिम युद्ध तक देवताओं और राक्षसों द्वारा , शिव से शस्त्रास्त्र प्राप्त करते रहने की होड़ लगी रहती है — जैसे आज के युग में , छोटे देश , रूस तथा अमरीका जैसी महाशक्तियों से शस्त्र मांगते रहते हैं ।" 41

अभिप्राय कि यह सब तो कोहलीजी को करना ही था । क्योंकि पौराणिक उपन्यास भी अन्ततः तो उपन्यास ही है । उसे उपन्यास के फार्म में ही आना चाहिए । उसमें ही उसकी सार्थकता है । अन्यथा जो बातें पुराणों में हैं , अतिशयोक्ति और चमत्कारपूर्ण , उन्हीं को यदि उपन्यास में भी रख दिया , तो वह तो पुराण-कथा को आज की भाषा में कहना हुआ । वह उपन्यास कहां से हुआ ?

हिन्दी साहित्यकोश भाग-2 में पृ. 156 तथा 161 पर ऐतिहासिक उपन्यास के साथ-साथ पौराणिक उपन्यास का उल्लेख भी किया है । पृ. 156 पर कहा गया है --" कथा के स्रोतों के आधार पर वर्गीकरण करके इन्हीं उपन्यासों के सामाजिक , राजनीतिक, धार्मिक , पौराणिक , ऐतिहासिक और वैज्ञानिक आदि अनेक विभेद हो सकते हैं ।"[42] इसी ग्रन्थ में पृ. 161 पर टिप्पणी प्राप्त होती है --" बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतर्थांस में आकार और विधान की दृष्टि से घटना-प्रधान , चरित्र-प्रधान और भाव-प्रधान उपन्यास प्राप्त होते हैं । घटना-प्रधान उपन्यास तिलस्मी , साहसिक , जासूसी, प्रेमाख्यानक , ऐतिहासिक , पौराणिक तथा विविध प्रकार के उपन्यास-रूपों की कोटियां हैं ।"[43] फिर इसी क्रम में पृ.162 पर जहां पौराणिक उपन्यासों की सूची दी गई है । इस सूची से पौराणिक उपन्यास क्या होते हैं या हो सकते हैं , उसकी अवधारणा स्पष्ट हो जाती है । कई बार उदाहरण विभावना के स्पष्टीकरण में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं । यथा —" सती सीता " , "वीर कर्ण " , "एकलव्य " , परशुराम", "सुभद्रा" , " "अनसूया" , "चन्द्रलेखा" , " सती सीमंतिनी" , "सती मदालसा" आदि के चरित्रों की अवतारणा करके लिखे गये उपन्यास इस कोटि (पौराणिक उपन्यास) में आते हैं ।"[44] स्पष्ट है ये तमाम उपन्यास प्रायः रामायण-महाभारत या किसी पुराण पर आधारित हैं । इनमें से कोई भी ऐतिहासिक चरित्र नहीं है । आश्चर्य होता है कि सन् 1963 में संपादित साहित्यकोश में जब "पौराणिक" उपन्यास

का विवरण प्राप्त होता है तो डा॰ रामदरश मिश्र का ध्यान उधर क्यों नहीं गया ? यदि उनका ध्यान गया होता तो "पौराणिक" उपन्यास को "ऐतिहासिक" लिखने की गलती शायद वे नहीं करते ।

इसी प्रकार की "आलोचनात्मक धांधली" हमें आंचलिक उपन्यास के संदर्भ में भी मिलती है । अधिकांश हिन्दी विद्वानों ने "आंचलिक" उपन्यास की सैद्धान्तिक व्याख्या तो ठीक-ठीक की है, परंतु वे ही विद्वान जब कृतिलक्षी आलोचना पर आते हैं, तब सन् 1954 (अर्थात् "मैला आंचल " उपन्यास का प्रकाशन) के बाद की तमाम-तमाम ग्रामभित्तीय उपन्यासों को वे "आंचलिकता" की कोटि में रख देते हैं । वस्तुतः ग्रामभित्तीय उपन्यास और आंचलिक उपन्यास के बीच भी कोई भेदक रेखा खींचना आवश्यक हो गया है । कई विद्वानों ने जगदीशचन्द्र कृत "धरती धन न अपना " को आंचलिक उपन्यास कहा है, क्योंकि यहां भी उपन्यास की कथाभूमि "घोड़ेवाहा" गांव को केन्द्रस्थ किए हुए है । परन्तु आंचलिकता की अन्य शर्तों पर "धरती धन न अपना " खरा नहीं उतरता । जिस प्रकार "मैला आंचल " का नायक "मेरीगंज गांव " है, उसी प्रकार धरती धन न अपना " का नायक "घोड़ेवाहा" गांव नहीं है, बल्कि काली नामक एक युवक है । यहां एक बात की स्पष्टता और कर लेनी चाहिए कि किसी उपन्यास के आंचलिक होने या न होने पर उसकी श्रेष्ठता का आधार नहीं है । "गोदान" आंचलिक नहीं है, तथापि उसकी महानता और श्रेष्ठता निर्विवादित है । उसी प्रकार किसी उपन्यास के मात्र "ऐतिहासिक" होने से वह श्रेष्ठ या प्रथम कोटि का उपन्यास सिद्ध नहीं हो जाता । उसे ऐतिहासिकता की शर्तों पर खरा उतरना होगा । अतः कोई उपन्यास यदि पौराणिक है तो "पौराणिक" होने मात्र से वह द्वितीय कोटि का उपन्यास सिद्ध नहीं हो जाता, अतः डा. भगवतीशरण मिश्र की भांति "पौराणिक उपन्यास को "ऐतिहासिक " बताने की हठ भी नहीं करनी चाहिए । ऐसी हठधर्मिता साहित्य के क्षेत्र के लिए वांछनीय नहीं है । यदि कोई लेखक "पौराणिक" उपन्यास लिखता है और वह "पौराणिकता"

की शर्तों और औपन्यासिक कला की शर्तों पर खरा उतरता है तो वह उपन्यास पौराणिक होते हुए भी श्रेष्ठ उपन्यासों की श्रेणी में जा बैठता है । उदाहरण के तौर पर हम डा. नरेन्द्र कोहली प्रणीत "दीक्षा" उपन्यास का नाम ले सकते हैं ।

इतिहास और पुराण :

उपर्युक्त चर्चा के संदर्भ में "इतिहास" और "पुराण " के अंतर को भलीभांति समझ लेना उपयुक्त होगा । इतिहास शब्द "इति + ह्रास " के योग से व्युत्पन्न हुआ है । "इति" का अर्थ होता है आदि या प्रारंभ । जब हम कहते हैं कि "अथ से इति तक उसकी सारी हकीकत हम जानते हैं " तो उसका अर्थ यह होता है कि उसकी वर्तमान से लेकर प्रारंभ तक की सारी बात हम जानते हैं । इस तरह "इतिहास" का शाब्दिक अर्थ होगा -- किसी भी वस्तु , व्यक्ति , देश की शुरूआत से लेकर अभी तक की कहानी । बल्कि "कहानी" से भी अधिक उपयुक्त शब्द होगा "हकीकत" । इतिहास कल्पना पर आधृत नहीं होता । हां , इतिहास की खोज में कहीं-कहीं कल्पना की भूमिका अवश्य होती है । परंतु इतिहास विशुद्ध रूप से तथ्यपरक और तथ्यमूलक होता है । ठोस सत्य व घटनाओं पर आधारित होता है । इतिहासकार "सब्जेक्टिव" नहीं हो सकता , उसे "आब्जेक्टिव " होना ही होगा । उसमें किसी व्यक्ति-विशेष के " likes-dislikes " नहीं चल सकते । इस अर्थ में वह विशुद्ध science होता है । उसकी दृष्टि भी वैज्ञानिक दृष्टि होती है । जिस तरह बिना प्रमाण के विज्ञान आगे नहीं बढ़ सकता, ठीक उसी तरह बिना प्रमाण के इतिहास भी आगे नहीं बढ़ सकता । यहां "एकस्मिन काले " कह देने से काम नहीं चलेगा । उस काल की बात उसकी तमाम-तमाम विशेषताओं , खामियों और खूबियों के साथ कहनी पड़ेगी । उसका समय निर्धारित करना पड़ेगा । इसलिए यहां तिथि , महीना वर्ष आदि का लेखा-जोखा होगा । इतिहास और काव्य (साहित्य) के संदर्भ में किसीने कहा है -- " In fiction everything is true except names and dates ; in History

nothing is true except names and dates."

[45] परंतु इसे एक अत्युक्ति ही समझना चाहिए। कोई इतिहास-विरोधी व्यक्ति ही ऐसा कह सकता है। वस्तुतः जो प्रजा अपने इतिहास को नहीं जानती वह शीघ्र ही पराधीन होती है। वही प्रजा कोई मकाम हासिल कर सकती है जो अपने इतिहास का अनादर नहीं करती। " Concise oxford Dictionary " में " History " की व्याख्या इस प्रकार की गई है —

" continuous methodical record of public events study of growth of nations, whole train of events connected with nation, person, thing; Systematic account of natural Phenomena etc" [46]

प्रस्तुत व्याख्या से "इतिहास" के जो अभिलक्षण सामने आते हैं, वे इस प्रकार हैं -- 1. इतिहास एक सतत प्रक्रिया है, अर्थात् प्रत्येक दिन, प्रत्येक क्षण इतिहास का निर्माण होता है। आज की घटनाएं कल का इतिहास हो जायेंगी। 2. इतिहास एक सुव्यवस्थित पद्धति है, अर्थात् यादृच्छिक दृष्टि से उसमें काम नहीं चल सकता। एक नियमित पद्धति का अनुसरण करना ही पड़ेगा। उसमें "मन-गढ़ंत और काल्पनिक के लिए कोई स्थान नहीं है। 3. उसमें किसी राष्ट्र के विकास की बाथा होती है। 4. उसमें घटनाओं की एक श्रृंखला होती है जो किसी राष्ट्र, व्यक्ति या वस्तु से संबंधित होती हैं। 5. सृष्टि में जो भी घटित होता है, अच्छा या बुरा, उसका एक व्यवस्थित लेखा-जोखा उसमें निहित होता है। दूसरे शब्दों में उसमें "निश्चितता" (Accuracy) पर विशेष ध्यान केन्द्रित रहता है। उसमें तिथ्यानुसार घटनाओं का सिलसिला होता है। बिना तिथियों के सम्यक् ज्ञान के उसमें कोई मनचाही " फेंकमफेंक " नहीं कर सकता।

"इतिहास" के संदर्भ में श्री प्रियंवद के विचार उल्लेखनीय रहेंगे --" इतिहास तथ्यों का प्रकटीकरण है । किसी भी काल में समाज, राजनीति, धर्म, मनुष्यों के अन्तर्सम्बन्ध इकहरे या सीधी रेखा में नहीं चलते । ये हमेशा संश्लिष्ट, जटिल और बहुस्तरीय होते हैं । उनके आपसी द्वन्द्व, अन्तर्विरोध, समीकरण, आघात-प्रतिघात सब इतिहास में दिखाई देते हैं । इसलिए इतिहास की विविध व्याख्याएं होती हैं । वह उसकी अप्रामाणिकता या भ्रम नहीं, बल्कि विषय की विविधता व बहुलतावाद है । उसकी व्यापकता है । यदि फाहियान लिखता है कि उसके समय में भारत में 600 धर्म थे तो समझा जा सकता है कि समाज व धर्म कितना जटिल होगा । रामविलास शर्मा भाषायी विकास व परिवारों के आधार पर आर्यों की स्थिति पर विचार करते हैं तो वह अलग दृष्टि होती है । 1857 की क्रांति पर ग़ालिब की डायरी (दस्तम्बू) और सुंदरलाल का " भारत में अंग्रेजी राज्य " या अंग्रेजी इतिहासकार और रामविलास शर्मा (वह 1857 की क्रांति को चीन, रूस, फ्रान्स की जनक्रांति के समकक्ष रखते हैं) अलग-अलग ध्रुवों पर खड़े हैं । साम्यवादी, राष्ट्रवादी व औपनिवेशिक या साम्राज्यवादी तीन दृष्टियों से भारत का इतिहास व्याख्यायित है । यह इतिहास की अप्रामाणिकता या अविश्वसनीयता नहीं है । उसका व्यापक परिदृश्य है । इतनी विविधता होते हुए भी सबका आधार कहीं-न-कहीं "ऐतिहासिक सत्यों का चुनाव " है । यह बहुत महत्वपूर्ण बिन्दु है । कोई ऐतिहासिक व्याख्या "काल्पनिक या भावात्मक तथ्यों" पर है तो वह अस्वीकार्य है । किसी भी समाज को ब्राह्मण, चांडाल, स्त्री, श्रमिक, सामंत, पूंजी-पति की दृष्टि से विवेचित किया जा सकता है, वे सब समाज की अलग-अलग तस्वीरें देंगे । दृष्टि लेखक की होगी, तथ्य इतिहास के ।[47] इसी क्रम में लेख के अंत में कहा गया है --" इति-हास मनुष्य की स्मृति है । स्मृति रोचक हो, उत्तेजक हो जरूरी नहीं । पर उसका एक्यूरेट होना जरूरी है । साहित्य मनुष्य का संश्लिष्ट अंतर्जगत या कि स्वप्न है । स्मृति और स्वप्न एक ही डोर के दो सिरे हैं । एक अतीत है, दूसरा भविष्य । एक से होकर हम दूसरे में प्रवेश पा सकते हैं ।

यही इतिहास और साहित्य का अन्तर्सम्बन्ध है । दोनों विषयों का एक दूसरे के लिए सरोकार और उत्तरदायित्व है । एक-दूसरे के लिए नैतिक व अनुशासनिक बाध्यता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार को ऐतिहासिक उपन्यास की इस मूल प्रतिज्ञा को नहीं भूलना चाहिए ।" 48

उपर्युक्त विवेचन से इतना तो साफ हो जाता है कि इतिहास तथ्यमूलक है । इतिहास में यथातथ्यता का ध्यान रखना होगा । इतिहास शास्त्र या विज्ञान है । "साहित्य" शब्द का जो व्यापकतम प्रयोग होता है, उसमें तो वे तमाम विषय साहित्य के अन्तर्गत आ जाते हैं जो शब्दमय हैं, वाणीमय है । किन्तु अंग्रेजी आलोचक डिक्वेन्सी ने इसका आगे चलकर दो वर्गों में विभाजन किया है — 1. Literature of Knowledge अर्थात् हमारे यहां का शास्त्र और 2. Literature of Power " अर्थात् हमारे यहां का काव्य या साहित्य । कहना न होगा कि "इतिहास" का समावेश प्रथम वर्ग या श्रेणी में होगा, और काव्य या साहित्य का समावेश द्वितीय के अन्तर्गत ।

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम "इतिहास" और "पुराण" पर विचार कर रहे हैं । ऊपर जो विवेचन है वह "इतिहास" को लेकर है । अब थोड़ा "पुराण" पर भी विचार कर लिया जाए, ताकि दोनों को आमने-सामने रखकर उनकी पारस्परिक तुलना की जा सके ।

डा॰ वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत-हिन्दी कोश में "पुराण" के मुख्यतया तीन अर्थ दिए हैं — 1. पुराना, प्राचीन, पूर्वकाल संबंधी, उदा॰ "पुराणमित्येव न साधु सर्वम् न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् " — मालविकाग्निमित्र (कालिदास) : 1/2 । 2. वयोवृद्ध, पुरातन और 3. अठारह पुराण : कुछ विख्यात धार्मिक पुस्तकें जो गिनती में 18 हैं तथा व्यास द्वारा प्रणीत मानी जाती हैं । ये पुस्तकें ही हिन्दू-पुराण कथा-शास्त्र का भंडार है । पुराणों में पाच विषयों का वर्णन है और इसलिए "पुराण" को पंचलक्षण भी कहते हैं । 49

डा. हरदेव बाहरी के "बृहद् अंग्रेजी-हिन्दी कोश " भाग-2 में " Mythology " के संदर्भ में बताया गया है : पुराण , पौराणिक कथासमूह , देवकथाएं , देवमाला , पुराणविद्या , पुराणकथाशास्त्र , देवकथाशास्त्र , पौराणिक कथाओं का विषय ।[50] इसीसे निःसृत शब्द " Mythonomy " तथा " Mythoplasm " के अर्थ क्रमशः "पुराण-शास्त्र " और "पुराण-रस " दिये गये हैं ।[51] इसी अर्थ में पौराणिक कथा या काल्पनिक कथा को " Myths " कहा जाता है ।[52]

इस प्रकार यहां जो विवेचन किया गया है उसके आधार पर इतना कहा जा सकता है कि "पुराण" का सम्बन्ध कथा से है । उसमें कथाएं होती हैं । ये कथाएं प्रायः देवताओं के संदर्भ में होती हैं और प्रायः काल्पनिक भी होती हैं । देवताओं से सम्बद्ध होने के कारण उनमें चमत्कार का तत्व भी ज्यादा होता है । उनमें तार्किकता और संगति का अभाव-सा रहता है ।

सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने ग्रन्थ " भारत का प्राचीन इतिहास " में रामायण-महाभारत के युग के संदर्भ में कहा है --" यदि हम महाभारतकाल को 1424 ई.पू. के लगभग स्वीकृत करें , तो उससे पहले के राजाओं का काल निश्चित करने में अधिक कठिनाई नहीं होगी । पांडवों का समकालीन कोशल (अयोध्या) का राजा ~~बृहद~~ बृहद्बल था । बृहद्बल और राम में 29 पीढ़ी का अन्तर है । इन 29 पीढ़ियों के लिए 500 साल का समय निश्चित किया जा सकता है । इस प्रकार रामचन्द्र महाभारत-युद्ध के 500 वर्ष के लगभग (1924 ई.पू.) पहले हुए । इक्ष्वाकु और रामचन्द्र का अन्तर 64 पीढ़ियों का है । इनके लिए यदि 1000 वर्ष का समय रख लिया जाए , तो सूर्यवंश के प्रवर्तक इक्ष्वाकु का समय 3000 ई.पू. के लगभग माना जा सकता है ।"[53]

उपर्युक्त कथन पर यदि विचार करें तो प्रतीत होता है कि ये तमाम गिनती केवल अनुमान पर आधारित है । पीढ़ियों के अंतर इत्यादि का कोई ठोस आधार नहीं है । सब कल्पना और अनुमान

पर आधारित है । और इतिहास और कल्पना और अनुमान पर नहीं चलता । कल्पना और अनुमान का सहारा लिया जाता है , पर उसके सहारे ठोस वास्तविकता तक पहुंचना होता है । इस प्रकार हमें अपने अतीत की तिथियां सिलसिलेवार बुद्ध और महावीर के काल से ही मिलती है । अतः उसके पूर्व के काल को हम पुराण-काल ही कह सकते हैं ।

डा. उषापुरी विद्यावाचस्पति ने अपने " भारतीय मिथक कोश" नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है —" जिस प्रकार होमर के इलियड और ओडिसी को तब तक कपोलकल्पित माना जाता रहा था , जब तक ट्राय के उत्खनन ने उसकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं कर दी थी । ठीक उसी प्रकार वेद , उपनिषद , रामायण , महाभारत , पुराण आदि समस्त ग्रन्थों के मिथकों को तीन दशक पूर्व तक काल्पनिक माना जाता रहा , जब तक 1956 में हस्तिनापुर की खुदाई में निकले पांडवों के पांचवे वंशज "निचक्षु" के युग के खंडहर नहीं मिल गये । खंडहरों ने पुराणों में अंकित हस्तिनापुर पर टिड्डियों के आक्रमण तथा गंगा में आयी बाढ़ को सिद्ध कर दिखाया । अधुनातन ऐतिहासिक खोजों के आधार पर महाभारत का युद्ध राजा नंद से 1015 अथवा 1050 वर्ष पूर्व हुआ था । आर्यभट्ट ने भी ज्योतिष परंपरा के अनुसार 3102 वर्ष पूर्व कलियुग का आरंभ माना है । महाभारतकाल के साथ द्वापर युग की समाप्ति सर्वस्वीकृत है । पश्चिम के अनेक विद्वानों का मत रहा है कि भारतीय विद्वान इतिहास लिखना नहीं जानते थे , किन्तु ह्युएनसांग के अनुसार भारत के हर राजा के साथ कोई-न-कोई सूत रहता था जो उसकी वंश-परंपरा आदि सूत्रों को कंठस्थ किए रहता था । प्रस्तुत तथ्य को नकारा नहीं जा सकता था । कंठस्थ करना भारत की चिंतन परंपरा है । लिपि की खोज से पूर्व भारत में जो कुछ हुआ , वह श्रुति-परंपरा से ही जीवित रहा । प्रलय से पूर्व जो मान्यताएं , सांस्कृतिक तथ्य , अथवा

घटनाएं घटीं , सब श्रुति नामसे अभिहित हुईं क्योंकि लिपि के अभाव में समस्त तथ्य कह-सुनकर ही परंपरागत प्रवहमान रहे । यह सर्वस्वीकृत है कि "श्रुति" अर्थात् वेद विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ है ।" [54]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर विचार करें तो निम्नलिखित तथ्यों की ओर ध्यान जाता है -- 1. निचक्षु पांडव के पांचवे वंशज थे उसका कोई एतिहासिक आधार नहीं है । 2. ह्युएनसंग ने भारत में राजदरबारों के सूतों द्वारा वंशपरंपरा के सूत्रों की बात कही है , लेकिन ह्युएनसंग सातवीं सदी में भारत आये थे , जब भारत में हर्षवर्द्धन का राज्य था । भारतवर्ष में वे सन् 629 से 645 ई. तक रहे । [55] 3. स्वयं डा. पुरी "श्रुति-परंपरा" की बात करती हैं और इतिहास में श्रुति-परंपरा से काम नहीं चल सकता ।

डा. सत्यकेतु विद्यालंकार ने प्राचीन तिथिक्रम निर्धारण के संदर्भ में लिखा है --" नन्द और चन्द्रगुप्त मौर्य का काल ग्रीक सम-सामयिकता द्वारा निर्धारित हो जाने पर प्राचीन भारत के अन्य राजवंशों और राजाओं का समय निश्चित कर सकना कठिन नहीं रह जाता । 322 ई.पू. में मोरियकुमार चन्द्रगुप्त ने नन्द का विनाश कर पाटलिपुत्र के राजसिंहासन को प्राप्त किया था । भारतीय तिथिक्रम का यह ध्रुव बिन्दु है , और इसीके आगे-पीछे अन्य तिथिक्रम निर्धारित किया जा सकता है । मौर्य राजवंश का समय निर्धारित हो जाने पर उसके पूर्ववर्ती या परवर्ती राजाओं का समय निश्चित कर सकना भी सुगम हो जाता है ।" [56] इसी ग्रन्थ में डा. विद्यालंकार बुद्ध की मृत्यु-तिथि 544 ई.पू. निर्धारित करते हैं ।

इस प्रकार मोटे तौर पर हमें ई.पू. छठी शताब्दी तक की कुछ तिथियां मिलती हैं । उसके पूर्व की तिथियां कोरे अनुमान पर आधारित हैं ।" अनेक ऐतिहासिकों ने बुद्ध और नन्द के काल को दृष्टि में रखकर विविध राजाओं का जो समय निश्चित किया है " [57] उसके अनुसार महाभारत-युद्ध का समय 1424 ई.पू. निर्धारित होता है । [58] किन्तु भारत के ज्योतिष-संबंधी प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार महाभारत-युद्ध का

समय 3102 ई.पू. है ।[59] ~~कहने का अभिप्राय~~ अभिप्राय यह कि प्राचीन महाभारतकालीन और रामायणकालीन तिथियों का निर्धारण अभी पूरी तरह हो नहीं पाया है, अतः इस पूरे काल को "पुराणकाल" कह सकते हैं ।

हमारे यहां सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग आदि की जो विभावना है, मोटे तौर पर हम प्रथम तीन युगों को पौराणिक और अंतिम कलियुग को ऐतिहासिक मान सकते हैं ।

पुराण-कथाएं कैसी होती हैं उसका केवल एक उदाहरण हम भारतीय मिथक कोश से प्रस्तुत कर रहे हैं —" कैटभ — मधु और कैटभ नामक दो असुरों की उत्पत्ति विष्णु के कानों के मैल से हुई थी । ब्रह्मा ने पहले मिट्टी से उन दोनों के आकार-प्रकार का निर्माण किया था, फिर ब्रह्मा की प्रेरणा से वायु ने उनकी आकृति में प्रवेश किया । ब्रह्मा ने उन पर हाथ फेरा तो जो एक कोमल था उसका नाम मधु रखा और जो दूसरा कठोर था उसका नाम कैटभ रखा । वे दोनों जल-प्रलय के समय पानी में विचरते रहते थे । उन्हें युद्ध करने की आकांक्षा रहती थी । एक बार वे द्युलोक में पहुँचे । विष्णु तथा उनकी नाभि से निकले कमल में ब्रह्मा सो रहे थे । उन दो असुरों ने अपने बल से उन्मत्त हो वहां विचरना प्रारंभ किया । विष्णु ने उन दोनों के बलिष्ठ रूप को देखकर उन्हें वर देने की इच्छा की — पर अभिमानी मधु-कैटभ स्वयं विष्णु को वर देना चाहते थे । विष्णु ने उनसे वर मांगा कि वे दोनों विष्णु के हाथों मारे जायें, तदुपरांत उन्होंने विष्णु से वर मांगा कि उन दोनों का वध खुले आकाश में हो तथा वे दोनों विष्णु के पुत्र हों । विष्णु ने वर दे दिया । तदुपरांत पद्मनाभ से उन दोनों का युद्ध हुआ । उन्होंने नारायण से प्रार्थना कि उनकी मृत्यु जल में न हो । नारायण ने उन दोनों को अपनी जंघा पर मलकर मार डाला । दोनों लाशें जल में मिलकर एक हो गयीं । उन दोनों दैत्यों के मेद से आच्छादित होकर वहां का जल अदृश्य हो गया, जिससे नाना प्रकार के जीवों का जन्म हुआ । वसुधा उन दोनों के मेदसे आपूरित होने के कारण मेदिनी कहलायी ।"[60] यह कथा महाभारत के वनपर्व, सभापर्व तथा भीष्म-

पर्व और हरिवंशपुराण के भविष्य पर्व में आयी है ।[6]

यह तो एक कथा है । ऐसी तो सैकड़ों-हजारों कथाएं इन पुराणोंमें संकलित हैं । ऊपर जो कथा वर्णित है उसमें कहीं भी तार्किकता और संगति नहीं है । किसीके कान के मैल से किसीकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? फिर ब्रह्मा मिट्टी से उन दोनों का आकार-प्रकार बनाते हैं । पर मिट्टी तो थी नहीं । खैर वह दूसरे लोक की रही होगी । किन्तु उत्पत्ति के बाद तो जीव स्वयं धीरे-धीरे बढ़ता है । जल-प्रलय तो पृथ्वी पर हुआ था , पर पृथ्वी को जन्म तो बाद में हुआ , जैसा कि कथा में वर्णित है , वह उन असुरों के मेद से उत्पन्न हुई , इसी-लिए तो मेदिनी कहलायी । फिर जल-प्रलय कहां हुआ ? ऐसे तो अनेक प्रश्न उठते हैं । पर प्रश्न करने वाले को हमारे यहां नास्तिक माना जाता है । किसीने सच ही कहा है हमारा देश प्रश्नों का देश नहीं , आश्चर्य-चिह्नों का देश है ।

इतने विवेचन के उपरान्त अब इतिहास और पुराण के अंतर को विश्लेषित कर सकते हैं — 1. इतिहास में काल-गणना और तिथि-निर्धारण तथ्याश्रित होते हैं , अनुमान के आधार पर उनका निर्धारण नहीं होता ; जबकि हमारे अधिकांश पुराणों की काल-गणना के लिए हमें अनुमान का ही सहारा लेना पड़ता है । 2. अतः जहां से हमें व्यवस्थित , वैज्ञानिक , प्रमाणित तिथियों का सिलसिला मिलता है ; उस समय को हम इतिहास के अंतर्गत रख सकते हैं और जिनकी व्यवस्थित तिथियां नहीं मिलती हैं उसको हम पुराण के अंतर्गत रख सकते हैं । 3. इतिहास तथ्यों पर आधारित है , वास्तविकता और यथार्थ पर आधारित है ; जबकि पुराण में कपोलकल्पित कथाओं का आधिक्य पाया जाता है । 4. इतिहास मिथकों का खंडन करता है , पुराण मिथकों का निर्माण करता है । 5. इतिहास तर्क और संगति पर आधारित है , इसलिए वह विज्ञान के निकट है ; दूसरी ओर पुराणों का तर्क से कोई लेना-देना नहीं है , अतः विज्ञान से वह दूर है । 6. डिक्वेन्सी ने जो

वर्गीकरण प्रस्तुत किया था उसके अनुसार इतिहास की गणना "Literature of knowledge" अर्थात् शास्त्र के अन्तर्गत होगी और पुराण की गणना "Literature of Power" अर्थात् काव्य के अन्तर्गत होगी, क्योंकि काव्य की भांति यहां भी भावना और कल्पना के लिए काफी गुंजायश है। 7. पुराणकार अपनी भावनाओं, संस्कारों, प्रवृत्तियों के अनुसार कई बार, बल्कि अधिकांशतः, तथ्यों को तोड़ता और मरोड़ता है और अपने प्रेय या आराध्य का पक्षकार होकर, उसी तरह निरूपण करता है; जबकि इतिहासकार इस प्रकार की छूट नहीं ले सकता। तथ्य अप्रिय हो तो भी उसे तथ्य या सत्य का ही पक्ष लेना होता है। 8. इतिहास पौरुषेय व्यक्तित्वों की बात करता है, पुराणों में प्रायः अपौरुषेय या देवताओं की चर्चा होती है। 9. इतिहास ऐतिहासिक व्यक्तियों को लेकर लिखा जाता है, ~~प्रश्नx~~ पुराण प्रायः देवताओं की बात करता है। 10. पुराण के तथ्य ऐतिहासिक हो सकते हैं, पर उसके लिए खोज की आवश्यकता रहती है, प्रमाणों की आवश्यकता रहती है और जब पुराण इतिहास में तब्दिल होगा तब उसके मिथकों और रूपकों की व्याख्या वास्तविकता या यथार्थ के धरातल पर होगी।

इतिहास और पुरातत्वविद्या :

~~इसxx~~ इतिहास और पुरातत्वविद्या (Archaeology) एक दूसरे की पूरक विद्या-शाखाएं (Disciplines) हैं। वस्तुतः पुरातत्वविद्या इतिहास की टूटती कड़ियों और श्रृंखला को जोड़ने और मिलाने का काम करता है। प्राचीन इतिहास की खोज उसका मुख्य कार्य है। उसके लिए जगह-जगह पर पुरातत्ववेत्ता उत्खनन (Excavation) कार्य करवाते हैं और उसके द्वारा नवीन ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन करते हैं। मोहनजोदरो के उत्खनन से ही सिन्धु घाटी की महान संस्कृति का पता चला था। अभी कई पुरातत्ववेत्ता प्राचीन द्वारिका की खोज में लगे हुए हैं। जिस दिन उनको अपने कार्य

में सफलता हासिल हो जायेगी उस दिन कृष्ण पौराणिक पुरुष न रहकर ऐतिहासिक पुरुष हो जायेंगे । इस प्रकार देखा जाए तो पुरातत्व इतिहास का निर्माण करता है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में सन् 1956 में हस्तिनापुर में जो खुदायी हुई थी उसका जिक्र आया है । उस खुदायी में पांडवों के पांचवे वंशज "निचक्षु" के युग के खंडहर प्राप्त हुए है । संक्षेप में कहें तो पुरातत्व इतिहास की श्रृंखलाओं का जोड़ने का कार्य करता है । पुरातत्व पौराणिक कल्पनाओं और मिथकों के आधार पर उनकी खोजबीन करता है और यदि उनका कोई इतिहास है तो उसे सामने लाने की भरसक चेष्टा करता है । किन्तु एक बात पुरातत्व और पुराण उभय में सामान्य (Common) है और वह है उभय का प्राचीनता या अतीत से सम्बन्ध ।

पुराण और संस्कृति :

किसी भी देश की सांस्कृतिक मान्यताओं , विश्वासों , देवी-देवताओं आदि का आधार पुराण होते हैं । पुराणों में मिथकों का प्राधान्य होता है और यह कहना अनुचित न होगा कि प्रत्येक देश की संस्कृति उसके मिथक साहित्य में सुरक्षित रहती है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मिथक की व्याख्या करते हुए कहा है -- "रूपगत सुंदरता को माधुर्य (मिठास) और लावण्य (नमकीन) कहना बिल्कुल झूठ है , क्योंकि रूप न तो मीठा होता है न नमकीन , लेकिन फिर भी कहना पड़ता है , क्योंकि अन्तर्जगत के भावों को बहिर्जगत की भाषा में व्यक्त करने का यही एक मात्र उपाय है । सच पूछिये तो यही मिथक तत्व है । मिथक तत्व वास्तव में भाषा का पूरक है । सारी भाषा इसके बल पर खड़ी है । आदि मानव के चित्त में संचित अनेक अनुभूतियां मिथक के रूप में प्रकट होने के लिए व्याकुल रहती हैं । मिथक वस्तुतः उस सामूहिक मानव की भाव-निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है जिसे कुछ मनोविज्ञानी (Archaetypal image) "आद्यबिम्ब " कहकर संतोष कर लेते हैं ।" [62] इस प्रकार संस्कृति का संबंध मिथकों से है और

मिथकों का सम्बन्ध पुराणों से है । ये मिथक कथाएं सिर्फ हमारे यहां है, यह भी सत्य नहीं है । वस्तुतः सभी प्राचीन संस्कृतियों में इस प्रकार की मिथक कथाएं उपलब्ध होती हैं । ग्रीक साहित्य में एक दन्तकथा मिलती है जिसके अनुसार लीड़ा नामक एक युवती हंस की सहायता से हेलन नामक एक सुंदर लड़की को जन्म देती है ।[63] कहनेका तात्पर्य यह कि किसी भी देश या राष्ट्र की संस्कृति में उसका पुराण साहित्य होता है ।

पौराणिक उपन्यास : डा. नरेन्द्र कोहली के पौराणिक उपन्यासों के विशेष संदर्भ में :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम पौराणिक उपन्यास का जिक्र कर चुके हैं और कह चुके हैं यथेष्ट स्थान पर उसकी और चर्चा की जाएगी । मोटे तौर पर वहां कहा गया है कि जो उपन्यास पौराणिक विषय-वस्तु पर आधारित होते हैं उनको पौराणिक उपन्यास की संज्ञा प्राप्त होती हैं । ऊपर हम इतिहास और पुराण पर काफी विस्तार से विवेचन कर चुके हैं । इस दृष्टि से जो उपन्यास अति-प्राचीन अतीत से सम्बद्ध हैं, किन्तु जो इतिहास की परिधि में नहीं आते उनको हम पौराणिक उपन्यास कह सकते हैं । डा. नरेन्द्र कोहली रामायण और महाभारत से सम्बद्ध उपन्यास, डा. भगवतीशरण मिश्र के "प्रथम पुरुष " तथा "पवनपुत्र " आदि उपन्यास, आचार्य चतुरसेन कृत "वयं रक्षामः ", मनु शर्मा के महाभारत पर आधारित उपन्यास, युगेश्वर कृत रामायण पर आधारित उपन्यास प्रभृति को हम पौराणिक उपन्यास कह सकते हैं । यहां एक बात हम कह सकते हैं कि आज जिन उपन्यासों को हम पौराणिक कहते हैं, कल उनकी ऐतिहासिकता प्रमाणित होने पर वे ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में आ सकते हैं । दूसरी एक बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह कि पौराणिक उपन्यास, उपन्यास हैं; पुराण नहीं । फलतः उनमें "मिथकों" के साथ अद्भुत प्रकार की समकालीन संगति बिठायी जाती है । उनमें "मिथक" और "इतिहास" का समन्वय किया

जाता है ।" "मिथक" शब्द अंग्रेजी के "मिथ" से बना है , जिसका अर्थ है पुराण कथा , कल्पित कथा एवं गप ।" 64 इसी मिथ से " मिथ " बना और हिन्दी में उसके साथ "क" प्रत्यय जोड़कर "मिथक" शब्द बनाया गया है । बृहद् हिन्दी कोश में मिथक का अर्थ " प्राचीन पुराकथाओं का तत्त्व , जो नवीन स्थितियों में नए अर्थ का वहन करें " ऐसा दिया गया है ।65 यहां मिथक के संदर्भ में एक बात जो कही गई है , ध्यान देने योग्य है । नवीन परिस्थितियों में ढलकर नए अर्थ देने की क्षमता मिथक में होती है । "मिथक" का यह लचीलापन ही उपन्यास के लिए काम की वस्तु है । स्वयं नरेन्द्र कोहली का मानना है —" भारतीय साहित्य में "मिथक" को असत्य या असत्य के आसपास की कोई चीज बिल्कुल नहीं मान सकते । हमारी मान्यताओं के अनुसार जो कुछ भी हमारे शास्त्रों और ~~xxx~~ धर्मग्रन्थों में वर्णित है , वह न केवल सत्य है , वरन् सशक्त है , इसलिए हम मिथक को पुराकथा कहते हैं ।" 66

डा. नरेन्द्र कोहली स्वयं "मिथक" या " पुराकथा" के संदर्भ में अपनी बात इस प्रकार स्पष्ट करते हैं --" मेरी दृष्टि में "मिथक " या " पुराकथा " में सबसे बड़ा गुण यही है कि उसे उलट-पुलट सकते हैं , इसके स्वरूप को बनाए रखते हुए । तुलसी ने जब राम-कथा लिखी थी , तब वाल्मीकि द्वारा स्थापित "मिथक " सामने थे और मेरे समक्ष श्रीमद्भागवत द्वारा स्थापित "मिथक " थे (यह बात उन्होंने अपने पौराणिक उपन्यास "अभिज्ञान" के संदर्भ में बतायी है , जिसमें उन्होंने श्रीकृष्ण और सुदामा के चरित्र को लिया है ।) मैंने इस चुनौती को स्वीकार किया , लेकिन प्रमुख घटनाओं और पात्रों को कहीं तोड़ा-मरोड़ा नहीं है ।" 67 अन्यत्र "अभिज्ञान" के संदर्भ में कहा गया है --" "अभिज्ञान" निस्संदेह उसी पुराकथा या अतीत का काल-खण्ड है , जिसके जीवन्त प्रमाण अब उपलब्ध हो रहे हैं । इस प्रकार वर्तमान व्यवस्था में "अभिज्ञान" ने मिथक और इतिहास के बीच कड़ी का काम किया है ।" 68

डा. कौशल किशोर ने इसी पौराणिक उपन्यास के संदर्भ में कहा है-- " सुदामा और श्रीकृष्ण की पुराणकथा को दोहराना उपन्यासकार (डा. नरेन्द्र कोहली) का लक्ष्य नहीं , उपलक्ष्य मात्र है । उनकी अनन्य मैत्री एवं अन्य पौराणिक प्रसंगों का वर्णन इस उपन्यास के स्थूल उपादान हैं , जबकि वास्तविक सूक्ष्म उपकरण तो वे हैं , जिसके "मिथकीय सत्य " भीतर से आधुनिक भारत की कहानी को उभारते हैं । जिसमें उपन्यासकार ने भारत की सदियों पुरानी दास्य-मनोवृत्ति , राजनीतिक उठक-पटक , निजी स्वार्थपरताएं और क्षुद्रता , बुद्धिजीवियों का मुखौटाधारी चेहरा और दोहरे मानदण्ड युक्त जिन्दगी , राजनीति की सर्वत्र वर्चस्वता एवं व्यापक मूल्य-स्खलन आदि का समाज-वैज्ञानिक विश्लेषण किया है । इस प्रकार यह उपन्यास अतीत से सम्बद्ध होकर भी अपनी संवेदना , दृष्टि , विचार, चिंतन और विश्लेषण में पूर्णतः नया और आधुनिक है । इसी अर्थ में यह एक विशिष्ट उपन्यास है , जिसकी फैन्टसी में पुनर्रचित भारतीय समाज और संस्कृति पूरी तरह प्रतिबिंबित हो उठे हैं । " [69]

वस्तुतः उपर्युक्त कथन में डा. कौशल किशोर जिन कारणों से "अभिज्ञान" उपन्यास को "विशिष्ट " उपन्यास कह रहे हैं , वे उपन्यास की मूलभूत आवश्यकताएं हैं । उपन्यास चाहे पौराणिक हो या ऐतिहासिक वर्तमान एवं आधुनिकता से वह किसी-न-किसी तरह जुड़ा रहता है , उसे जुड़ा रहना होता है । यह अभिलक्षण ही उसे उपन्यास बनाता है । "चारु-चन्द्रलेख" (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी) यों तो ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के इतिहास को रूपायित करनेवाला उपन्यास है , परन्तु इस ऐतिहासिक आख्यान में भी उनकी दृष्टि पूर्णतया आधुनिक है । वे भारतवर्ष की पराधीनता के कारणों की तलाश करते हैं । इसमें द्विवेदीजी ने यह बताने का भरसक प्रयत्न किया है कि भारत जब विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त हो रहा था तब हमारे देश की प्राण-शक्ति तंत्र-मंत्र , भूत-पिशाच-वैताल , डाकिनी-

शाकिनी , ऋद्धि-सिद्धि , सुन्दरी-साधना , मोहन और उच्चाटन में लोप हो रही थी । कोटि-कोटि मनुष्यों को रोग , शोक , मोह और पराधीनता से मुक्त करने के लिए समाज की नव व्यवस्था के स्थान पर अभ्रक और पारक के खरल-संयोग से उत्पन्न कोटि-वैधी-रस की तलाश की जा रही थी । अतः उसके प्रत्येक पृष्ठ से आह्वान का स्वर गुंजित होता है । सीदी मौला , गोरक्षनाथ , अक्षोभ्य भैरव प्रभृति पात्रों के मुंह से लेखक ने एकाधिक बार कहलवाया है कि व्यक्तिगत सिद्धियां बाहरी विदेशी आक्रमणकारियों के सम्मुख व्यर्थ सिद्ध होती हैं । संगठित संघ-श्रि शक्ति ही वहां काम आ सकती है ।[70] गुरु गोरक्षनाथ एक स्थान पर अमोघवज्र को कहते हैं — "सारे जगत को भूलकर अपनी मुक्ति की चिन्ता करना सबसे बड़ी माया है । आप जलते हुए शस्य-क्षेत्रों की उपेक्षा नहीं कर सकते , टूटते हुए मंदिरों से आंख नहीं मूंद सकते , ललकते हुए शिशुओं और घिघियाते हुए वृद्धों की ओर से कान नहीं बन्द कर सकते । आप संगठित होकर ही संगठित अत्याचार का विरोध कर सकते हैं । यह सुन्दरी-साधना , यह महायौनाचार , यह चक्रपूजा , यह महाविद्या-सिद्धि आपको नहीं बचा सकती ।"[71] इसमें आचार्य द्विवेदीजी हमारे पराजय के कारणों का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं । उनका मानना और कहना है कि शास्त्र , रूढ़ि और परंपरा के आदेश काल-सापेक्ष होते हैं । इसी उपन्यास में वे बताते हैं कि गुप्त सम्राटों ने सदा पुराने शास्त्रों को नयी परिस्थितियों के अनुसार संशोधित करने का प्रयत्न किया था ।[72] भटिंडा की लड़ाई में राजपूतों की हार क्यों हुई उसका बड़ा अच्छा विश्लेषण द्विवेदीजी ने अक्षोभ्य भैरव नामक पात्र से करवाया है । यथा — "भटिंडा की लड़ाई में राजपुत्रों की मौल सेना सूर्योदय में ही लड़ने को बाध्य हुई । कल्यपाल सोये हुए थे , कलेऊ नहीं मिला । अपराह्न तक लड़ते-लड़ते वे क्लान्त हो गए । लड़ते-लड़ते खा नहीं सकते थे , हजार बाधाएं थीं , चौका नहीं था ,

अस्पृश्य से स्पर्श का बचाव नहीं था , घोड़ों के मांस से काम नहीं चलो सकते थे , शत्रु की मार से नहीं , पेट की मार से भहरा गए ।"[73] इस प्रकार द्विवेदीजी भले ही अतीत की बात कह रहे हैं , किन्तु उनकी दृष्टि बराबर आज पर लगी हुई है । ऊँच-नीच की भावना , जाति-वाद , उच्चजातिभिमान , खान-पान के नियम और अनेक प्रकार की वर्जनाओं के कारण हम xxxx पराजित हुए थे । वस्तुतः इस बात का ध्यान हमेशा रहना चाहिए कि कुछ नीति-नियम इत्यादि देश-काल सापेक्ष होते हैं । सामान्य परिस्थितियों के नियम विशिष्ट परिस्थितियों पर नहीं लागू कर सकते और उसी तरह विशिष्ट परिस्थितियों के नियम सामान्य परिस्थितियों पर नहीं लागू हो सकते । हमेशा वास्तविक या वर्तमान स्थिति का जायजा लेकर निर्णय लेने पड़ते हैं । इसी साल (सन् 2006) सूरत में जो बाढ़ आयी थी बहुत से लोग जो इस विषय के जानकार हैं , उनका मानना है कि वह कुदरती कम मानव-सर्जित ज्यादा थी । उकई बांध का जो "मैन्युअल" था वह सामान्य स्थितियों के लिए था , लेकिन असामान्य स्थितियों में असामान्य निर्णय लेने पड़ते हैं और वहीं पर चूक हो गयी । यदि समय रहते शनैः शनैः पानी छोड़ा गया होता तो करोड़ों के जान-माल की रक्षा हो सकती थी ।

कहने का अभिप्राय यह कि ऐतिहासिक या पौराणिक उपन्यास भले अतीत से वास्ता रखता है , किन्तु उपन्यासकार की दृष्टि आधुनिक ही रहती है । उपन्यास इस वैज्ञानिक युग की देन हैं , अतः उसमें निरूपित घटनाओं में तार्किकता और संगति बिठानी ही पड़ती हैं , फिर चाहे वह पौराणिक कथावस्तु पर आधारित ही क्यों न हो । डा. नरेन्द्र कोहली ने "अभिज्ञान" में सुदामा के माध्यम से आज के साहित्यकारों , अध्यापकों , शिक्षा-संस्थाओं और सत्ता से मदांध समाज और राजनीति के नेताओं पर बड़ी करारी चोट की है । डा. तेजेन्द्र शर्मा के मतानुसार " हमारे इतिहास की कोई घटना यदि हमारे वर्तमान को समझने में सहायक

होती है अथवा हमारा वर्तमान भूतकाल की एक कड़ी बन जाता है , तो वह एक उच्च स्तरीय साहित्य को जन्म देता है । टी.एस. इलियट का "ट्रेडिशन एण्ड इंडिविज्यूअल टैलेण्ट " का सिद्धान्त यहां भी लागू किया जा सकता है ।" [74]

हम प्रायः देखते हैं कि पुराणों पर , पौराणिक सभ्यता और संस्कृति पर बातें करनेवाले लोग अतीत का गुणगान करते हैं और उसके सामने वर्तमान की बुराइयां करते हैं ; किन्तु डा. नरेन्द्र कोहली ने इसके विपरीत कृष्ण-सुदामा युग में भी ज्ञान तथा साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त सडांध को ~~xxxxxx~~ निरावृत किया है । डा. कौशल किशोर इस संदर्भ में कहते हैं --" सुदामा का जीवन यह सोचने को विवश करता है कि आधुनिक भारत में आर्थिक विषमताएं कोई नयी चीज नहीं है । इसकी जड़ें इतिहास के सभी कालों में कहीं बहुत गहरी रही हैं । इसके लिए उत्तरदायी मात्र शोषक-सामंतवादी व्यवस्था ही नहीं , प्रत्युत जनसामान्य की उदासीनता , उनकी संतोषवृत्ति , भाग्यवादिता और कर्तव्यहीनता आदि भी हैं । सुशीला का चरित्र और सोच न केवल सुदामा एवं तत्कालीन समाज के लिए , बल्कि अत्याधुनिक समाज के लिए भी चुनौतीपूर्ण और वरेण्य बना है ।" [75] इस प्रकार "अभिज्ञान " उपन्यास में हम देख सकते हैं कि सुदामा का चिंतन एक सचेत और जागरूक बुद्धिजीवी का है , जिसमें अपनी तत्कालीन और आधुनिक काल की दशा और देश की दुर्दशा , दोनों का वस्तुगत (objective) आकलन और विश्लेषण है ।

सुदामा की भांति कृष्ण के चरित्र को भी उन्होंने एक नया आयाम दिया है । प्रस्तुत उपन्यास में डा. नरेन्द्र कोहली ने कृष्ण के बिहारी , लीलाप्रिय , सहस्त्ररमणीरमण रूप का प्रत्याख्यान किया है तथा राम की तरह उन्हें भी मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है । यहां उन्होंने कृष्ण को एक नयी नैतिकता को

स्थापित करने वाले जननायक के रूप में स्थापित किया है । सहस्त्ररमणीरमण की नूतन व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि भौमासुर के संहार के पश्चात् उसके द्वारा बंदिनी बनायी गयी सोलह हजार रमणियों को कृष्ण ने मुक्ति दिलवायी थी, इतना ही धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से उनका स्वीकार किया था । गोपियों की मटकियों को फोड़ने के प्रसंग को भी उन्होंने तत्कालीन समाज की एक गहरी आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकता के रूप में चित्रित करके आधुनिक संदर्भ में अर्थगम्य बनाया है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित कृष्ण एक आधुनिक समाजवादी दार्शनिक , विचारक , राजनीतिज्ञ , लौकिक और अत्यधिक मानवीय प्रतीत होते हैं , जिन्होंने निष्काम कर्मयोग के दर्शन के द्वारा लोगों को कर्माभिमुख किया है । फलतः इस उपन्यास की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए डा. कौशल किशोर उसकी उपादेयता को सिद्ध करते हैं । यथा — " अब तक के विचारकों या साहित्यकारों ने मार्क्स के सिद्धान्त के आलोक में जब-जब भारतीय संस्कृति , पौराणिक या मिथकीय गाथाओं एवं घटनाओं , दर्शन और मनीषा पर विचार किया था ; तब-तब उन्होंने उसे या तो भारतीयता के विरूद्ध पाया था अथवा उसे विरूपित करके प्रस्तुत किया था । फलस्वरूप ऐसे चिंतन लोकग्राह्य नहीं बन पाए । किन्तु डा. नरेन्द्र कोहली ने अपने इस उपन्यास में जिस नवीन दृष्टि से कर्मयोग , मिथकीय और ऐतिहासिक कथाओं एवं उनसे संबद्ध घटनाओं का समन्वय कर , साथ ही उनकी समसामयिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुति कर , उसे समाजवादी चिंतन से जोड़ने का भगीरथ प्रयत्न किया है । वह उसे अधिक से अधिक लोकग्राह्य बनाने का प्रयत्न है । लेखक इस प्रयत्न में बहुत दूर तक सफल भी हुआ है ।" [76]

यहाँ एक बात हम स्पष्ट कर दें कि प्रस्तुत अध्याय में हम अपने आलोच्य उपन्यासों से उदाहरण न लेकर दूसरे-दूसरे उपन्यासों के उदाहरण इसलिए प्रस्तुत कर रहे हैं कि उन उपन्यासों की चर्चा तो आगामी अध्यायों में होनेवाली ही है , अतः उनके समग्र कृतित्व पर प्रकाश डालने का भी एक प्रयास हुआ है ।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

निष्कर्ष :
======

इस उपशीर्षक के अन्तर्गत मेरा उपक्रम अध्याय के निष्कर्ष प्रस्तुत करने का है । फलतः अध्याय के समग्रावलोकन के जरिये कुछ निष्कर्ष निकालने का एक संनिष्ठ प्रयास हमने किया है । प्रस्तुत अध्याय के निष्कर्ष यहां दिए जा रहे हैं —

(1) उपन्यास इस नये युग की नयी विधा है । यूरोप में उत्क्रांति के उपरान्त उसका आविर्भाव हुआ था । इसीलिए उसे " Novel " कहा गया है, जिसका अर्थ "नवीन" होता है । भारतीय "नवजागरण" जिसे कई लोग "इण्डियन रेनेसां " भी कहते हैं, अठारहवीं -उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ और तब अंग्रेजी साहित्य के प्रभावस्वरूप हमारे यहां भी " नोवेल" का उद्‌भव हुआ , जिसे हिन्दी और बंगला में "उपन्यास" कहा जाता है ।

(2) उपन्यास की गणना "कथा-साहित्य " के अंतर्गत होती है , ~~फिर~~x और हमारा प्राचीन कथा-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है ; लेकिन आधुनिक उपन्यास वस्तु , शिल्प , परिवेश , विचार-धारा आदि अनेक दृष्टियों से उस प्राचीन कथा-साहित्य से अलग पड़ता है ।

(3) अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की भांति हिन्दी में भी उपन्यास का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हुआ । पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत " भाग्यवती" का प्रकाशन सन् 1878 में हुआ था । इस दृष्टि से हिन्दी उपन्यास का इतिहास सवा-सौ वर्षों से ज्यादा नहीं है ।

(4) इन सवा-सौ बरसों के औपन्यासिक -विकास को मुख्यतया हम तीन सोपानों में रख सकते हैं — पूर्व-प्रेमचन्दकाल (सन् 1878 ई. - 1918 ई.) , प्रेमचन्दकाल (सन् 1918-1936)

तथा प्रेमचन्दोत्तरकाल (सन् 1936- अद्यावधि) । हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्दजी का जो महती प्रदान है, उसे देखते हुए यह विभाजन हुआ है ।

(5) प्रम××प्रेमचन्दकाल×× पूर्व-प्रेमचन्दकाल में हमें पांच औपन्यासिक प्रवृत्तियां प्राप्त होती हैं — सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, जासूसी उपन्यास, तिलस्मी उपन्यास और अनूदित उपन्यास ।

(6) प्रेमचन्दकाल में हमें मुख्यतया दो औपन्यासिक प्रवृत्तियां उपलब्ध होती हैं -- सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास । किन्तु प्राधान्य तो समस्यामूलक सामाजिक उपन्यासों का ही रहता है । जासूसी, तिलस्मी और अनूदित उपन्यास इस कालखण्ड में नहीं लिखे गए ऐसा कतई नहीं है ; लेकिन जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों को साहित्यिक और स्तरीय उपन्यास नहीं माना जाता । उपन्यास के प्रारंभ को देखते हुए प्रारंभिक काल में उसकी कुछ चर्चा हुई, किन्तु बाद में उन उपन्यासों का उल्लेख करना आलोचकों ने उचित नहीं समझा । अनूदित उपन्यास साहित्यिक और स्तरीय होते हैं, किन्तु वे उपन्यास अपनी मूल भाषा की संपत्ति माने जाते हैं, अतः बाद के कालों में उनका उल्लेख भी नहीं हुआ है ।

(7) प्रेमचन्दोत्तर काल में अनेक औपन्यासिक प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं — सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मम××म×× मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी या मार्क्सवादी उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, पौराणिक उपन्यास, व्यंग्यात्मक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, साठोत्तरी उपन्यास और समकालीन उपन्यास । इनमें अंतिम दोमें काल-विषयक विभावना भी निहित है । सन् 1960 से 1980 तक के उपन्यासों को "साठोत्तरी" उपन्यास की संज्ञा मिली है और सन् 1980 से इधर के बीस-पचीस

साल के उपन्यासों को समकालीन उपन्यास कहा गया है । यहां एक और तथ्य ध्यातव्य रहेगा कि "साठोत्तरी उपन्यास " सन् साठ के बाद के होंगे किन्तु साठ के बाद का कोई भी उपन्यास साठोत्तरी नहीं कहलायेगा । केवल उन उपन्यासों को साठोत्तरी कहा जायेगा जिनमें साठोत्तरी मानसिकता होगी । यही बात "समकालीन उपन्यास " पर भी लागू होगी । केवल उन उपन्यासों को समकालीन की संज्ञा से अभिहित किया जायेगा जिनमें समकालीन चेतना का संन्निवेश होगा ।

§8§ जिस प्रकार वास्तविक सामाजिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचन्दयुग में हुआ , ठीक उसी प्रकार वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात भी प्रेमचन्दयुग में हुआ ।

§9§ पौराणिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचन्दोत्तर काल में हुआ है । जिस प्रकार "आंचलिक उपन्यासों " का सूत्रपात रेणु से और "व्यंग्यात्मक " उपन्यासों का सूत्रपात श्रीलाल शुक्ल से माना जाता है ; ठीक उसी प्रकार पौराणिक उपन्यासों का सूत्रपात डा. नरेन्द्र कोहली से माना जाता है या माना जाना चाहिए ।

§10§ कई विद्वान ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक उपन्यास में कोई भेद नहीं करते और वे पौराणिक उपन्यास को भी ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में ही रखते हैं , किन्तु अब अनेक विद्वानों ने पौराणिक उपन्यासों की अलग "कैटेगरी" को मान्यता दे दी है ।

§11§ ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक उपन्यास में उतना ही अंतर है जितना अंतर इतिहास और पुराण में है । ऐतिहासिक और पौराणिक उपन्यास को एक वे ही विद्वान मानते हैं , जो इतिहास और पुराण को भी एक ही मानते हैं । किन्तु अब यह भलिभांति स्थापित हो चुका है कि इतिहास और पुराण दो भिन्न-भिन्न विधाशाखाएं हैं ।

§12§ इतिहास और पुराण के प्रमुख व्यावर्तक लक्षण इस प्रकार हैं -- 1. इतिहास में काल-गणना और तिथि-निर्धारण तथ्याश्रित होते हैं, जबकि अधिकांश पुराणों की काल-गणना के लिए अनुमान का सहारा लेना पड़ता है । 2. जहां से हमें व्यवस्थित, वैज्ञानिक, प्रमाणित तिथियों का सिलसिला मिलता है, उसे हम इतिहास कहते हैं और जिनकी तिथियों के बारे में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है, उनको हम पुराण कहते हैं । 3. इतिहास वास्तविक घटनाओं पर आधारित होता है, जबकि पुराणों में कपोलकल्पित कथाओं का आधिक्य पाया जाता है । 4. इतिहास मिथकों का खंडन करता है या उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करता है, जबकि पुराण मिथकों का निर्माण करता है । 5. इतिहास पौरुषेय व्यक्तित्वों की बात करता है, जबकि पुराणों में वर्णित व्यक्तित्व प्रायः अपौरुषेय या देवता होते हैं ।

§13§ डा. नरेन्द्र कोहली का जन्म सन् 1940 में सियालकोट § अब पाकिस्तान § में हुआ था और अभी वे जीवित हैं, अतः उनका रचना-काल सन् 1960 से शुरू होता है । उपन्यासों की पूर्ववर्ती श्रेणी-विभाजन में उनके उपन्यास "साठोत्तरी" और "समकालीन" की परिधि में आते हैं और भले ही उन्होंने पौराणिक उपन्यास दिए हैं, किन्तु उनकी चेतना आधुनिक और नयी है । उन्होंने पौराणिक मिथक-कथाओं की भी बुद्धिगम्य व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं । दूसरे शब्दों में कहें तो उनके उपन्यास रामायण और महाभारत की व्याख्या आधुनिक संदर्भ में करते हैं ।

§14§ अब तक के विचारक या साहित्यकार जब-जब भारतीय संस्कृति में निहित पौराणिक मिथकीय गाथाओं को मार्क्सवादी सिद्धान्त के आलोक में देखते थे तो या तो उन्हें भारतीयता के विरूद्ध पाते थे या फिर उन्हें विरूपित कर देते थे ; फलतः उनका उस प्रकार का समाजवादी या प्रगतिवादी चिंतन लोकग्राह्य नहीं हो पाता था । किन्तु डा. नरेन्द्र कोहली ने इन पुराण कथाओं को समसामयिक

परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर उसे उस समाजवादी चिंतन से जोड़ने का स्तुत्य और भगीरथ प्रयत्न किया है । उनके उपन्यास हमारे अतीत को आज के बुद्धिवादी परिप्रेक्ष्य में रखकर उनकी नवीन बुद्धिवादी , तर्कसंगत , सर्वग्राह्य व्याख्या प्रस्तुत करते हैं और इस प्रकार मिथक और इतिहास का समन्वय करके इतिहास की कुछ कड़ियों को जोड़ने का काम करते हैं । अतः आज के संदर्भ में एक विशिष्ट वर्ग के लिए डा. नरेन्द्र कोहली के औपन्यासिक साहित्य की उपादेयता स्वतः सिद्ध है ।

===== xxxxxx ========

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ काम्पेक्ट आक्सफर्ड रेफरेन्स डिक्शनेरी : पृ. 575 ।

§2§ इबिड : पृ. 575 ।

§3§ सी : नोवेल एण्ड द पिपुल : राल्फ फोक्स : पृ. 83 ।

§4§ हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डा. भारतभूषण अग्रवाल : पृ. 23 ।

§5§ वही : पृ. 23 ।

§6§ भारतीय भाषाकोश : केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय : द्वितीय खण्ड : पृ. 40 ।

§7§ वही : पृ० 40 ।

§8§ द्रष्टव्य : " आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण : डा. मोहम्मद अजहरूद्दीन ढेरीवाला : पृ. 20-23 ।

§9§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : सं. डा. सुषमा प्रियदर्शिनी : लेख-- हिन्दी का प्रथम उपन्यास : डा. उषा पांडेय : पृ. 126 ।

§10§ परीक्षागुरु : लाला श्रीनिवासदास : भूमिका से ।

§11§ वही : भूमिका से ।

§12§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : सं. डा. सुषमा प्रियदर्शिनी : लेख-- हिन्दी का प्रथम उपन्यास : डा. उषा पांडेय : पृ. 125 ।

§13§ हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ० 434 ।

§14§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. गणेशन : पृ. 75 ।

§15§ समीक्षायण : डा. चारूकान्त देसाई : पृ. 122 ।

§16§ राइटर्स एट वर्क : फर्स्ट सिरीज § 1958§ : पृ. 60 ।

§17§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास : सं. डा. सुषमा प्रियदर्शिनी : पृ० 124 तथा " हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा

में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 65 ।

(18) द्रष्टव्य : वही : पृ. 73 ।

(19) वही : पृ. 73 ।

(20) वही : पृ. 73 ।

(21) द्रष्टव्य : युग-निर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 33 ।

(22) द्रष्टव्य : वही : पृ. 32-33 ।

(23) द्रष्टव्य : " हिन्दी उपन्यास साहित्य की परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 487-489 ।

(24) द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा. त्रिभुवनसिंह : परिशिष्ट से ।

(25) द्रष्टव्य : " हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक क्षण , ग्रंथियों , समस्याओं एवं कामकुण्ठाओं का चित्रण " : डा. मनीषा ठक्कर : शोध-प्रबंध : पृ. 410-411 ।

(26) "हिन्दी उपन्यास साहित्य की परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास " : पृ. 115-119 ।

(27) द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना : एक सर्वेक्षण : डा. वामन अहिरे : शोध- प्रबंध: परिशिष्ट - पृ. 1-5 ।

(28) द्रष्टव्य : "हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा " : डा. रामदरश मिश्र : पृ. 222-223 ।

(29) द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा. त्रिभुवनसिंह : पृ. 767-770 ।

(30) द्रष्टव्य : चिंतनिका : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 92 ।

(31) द्रष्टव्य : व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा रागदरबारी : डा. नंदलाल कल्ला : पृ. 293 ।

(32) द्रष्टव्य : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 147-148 ।

§34§ द्रष्टव्य : हंस : 2004-2005-2006 ।

§35§ द्रष्टव्य : "पौराणिक उपन्यास : समीक्षात्मक अध्ययन " : डा. हितेन्द्र यादव : पृ. 11-13 ।

§32§ "हिन्दी उपन्यास की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 147-282 ।

§36§ द्रष्टव्य : " हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा " : डा. रामदरश मिश्र : पृ. 223 ।

§37§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. गणेशन : पृ. 95 ।

§38§ प्रथम पुरुष : डा. भगवतीशरण मिश्र : भूमिका से : पृ. 6 ।

§39§ वही : पृ. 5 ।

§40§ लेख - प्रियंवद : इतिहास और उपन्यास : हंस- अक्तूबर : 2005 : पृ. 35 ।

§41§ "दीक्षा" की सृजन-यात्रा : डा. नरेन्द्र कोहली : आधुनिक हिन्दी उपन्यास : सं. भीष्म साहनी, रामजी मिश्र और भगवतीप्रसाद निदारिया : पृ. 529-530 ।

§42§ हिन्दी साहित्यकोश : भाग-2 : पृ. 156 ।

§43§ वही : पृ. 161 ।

§44§ वही : पृ. 162 ।

§45§ द्रष्टव्य : काव्य के रूप : डा. गुलाबराय : पृ. 154 ।

§46§ द कनसाइज आक्सफर्ड डिक्शनरी : पृ. 567 ।

§47§ हंस : अक्तूबर- 2005 : पृ. 37-38 ।

§48§ वही : पृ. 38 ।

§49§ संस्कृत-हिन्दी कोश : डा. वामन शिवराम आप्टे : पृ. 623-624 ।

§50§ बृहत् अंग्रेजी-हिन्दी कोश : भाग-2 : डा. हरदेव बाहरी : पृ. 1193 ।

§51§ वही : पृ. 1193 ।

§52§ वही : पृ. 1193 ।

(53) भारत का प्राचीन इतिहास : डा. सत्यकाम विद्यालंकार : पृ. 122 ।
(54) भारतीय मिथक कोश : डा. उषापुरी विद्यावाचस्पति : पृ. 22-23 ।
(55) द्रष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : डा. रामधारीसिंह दिनकर : पृ. 224 ।
(56) भारत का प्राचीन इतिहास : पृ. 317 ।
(57) वही : पृ. 319 ।
(58) वही : पृ. 319 ।
(59) वही : पृ. 317-318 ।
(60) भारतीय मिथककोश : पृ. 76 ।
(61) वही : पृ. 76 ।
(62) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथमाला : खण्ड-7 : पृ. 85 ।
(63) सी : एन ए.बी.जेड. आफ लव : डा. इंगे एण्ड स्टेंगलर : पृ. 30 ।
(64) भार्गव एंग्लो हिन्दी शब्दकोश : पृ. 535 ।
(65) बृहद हिन्दी कोश : पृ. 894 ।
(66) डा. नरेन्द्र कोहली : 7 जनवरी , 1995 को दिया गया साक्षात्कार
(67) वही ।
(68) "पौराणिक उपन्यास : समीक्षात्मक अध्ययन " : सं. डा. हितेन्द्र यादव : पृ. 30 ।
(69) प्रकर : अक्तूबर : 1984 : पृ. 20-21 ।
(70) द्रष्टव्य : " हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास " : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 184 ।
(71) चारु चन्द्रलेख : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृ. 142 ।
(72) द्रष्टव्य : वही : पृ. 345 ।
(73) वही : पृ. 348 ।
(74) " डा. नरेन्द्र कोहली : व्यक्तित्व और कृतित्व " : डा. तेजेन्द्र शर्मा : पृ. 84 ।
(75) प्रकर : अक्तूबर-1984 : पृ. 22 (76) वही : पृ. 23 ।

======== XXXXXXX =========